★ कारावास

● काल-पुरुष श्रीकृष्ण के जीवन पर आधारित बृहद् उपन्यास-माला का यह द्वितीय खण्ड रामकुमार भ्रमर की रोचक शैली के साथ-साथ, उनके गहन चिन्तन-मनन का परिणाम है। श्रीकृष्ण के जीवन और कालखण्ड पर अनेक खोजपूर्ण तथ्यों से संवारी गयी यह उपन्यास-माला 'अनन्त' के व्यक्तित्व और कार्य सम्बन्धी ऐसे अनेक प्रामाणिक तथ्यों से परिचित कराती है, जो अब तक बहुतों के लिए अजाने रहे हैं।

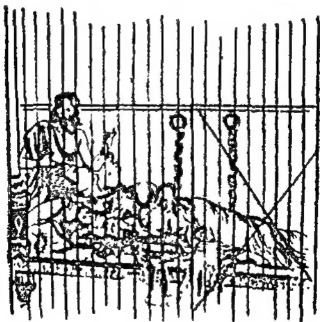
● 'कारावास' में श्रीकृष्ण जन्म के समय की जटिल परिस्थितियों के शब्दचित्र मथुरा गणसंघ में बढ़ रहे गहरे असंतोष के रोमांचक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। देवकी और वसुदेव के घोर कष्टों और मानसिक यातनाओं का मार्मिक वर्णन मन में गहरे तक उतर कर व्याकुल कर देता है।

● श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित उपन्यास-माला इससे पूर्व प्रकाशित भ्रमर जी की 'महाभारत' पर आधारित १२ खण्डों में विभाजित बृहद् उपन्यास-माला से आगे हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं के लिए नवीनतम और अप्रतिम भेंट है।

श्रीकृष्ण कथा पर आधारित उपन्यास २

रामकुमार भ्रमर

कारावास



कारावास
(उपन्यास)

प्रथम संस्करण : १६८६

प्रकाशक :
सरस्वती विहार
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

मुद्रक :
गौतम आर्ट प्रेस
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य : पैंतीस रुपये

KARAVAS
(Novel)
RAMKUMAR BHRAMAR

First Edition : 1986

Price : 35-00

'कारावास' से 'कालिन्दी के किनारे' तक

श्रीकृष्ण को लेकर श्रद्धा और भक्ति से पूर्ण अनेक ग्रन्थों और असंख्य काव्यों की रचना हुई है। नृत्य, नाट्य रूप को और रासों द्वारा भगवान के प्रति भक्ति पूर्ण अभिव्यक्तियों ने जनमानस में गहन श्रद्धा और प्रचार पाया है। यह रूप सर्वस्वीकृति, सर्वमान्य और सर्वव्यापी है। इसमे तनिक भी संशय नहीं कि श्रीकृष्ण के जन्म को लेकर जिन घटनाओं का वर्णन होता है, प्राकृतिक उथल-पुथल और देवकी-वसुदेव के कष्टों की चर्चा आती है, वे सत्य है, किन्तु मानव रूप में अवतरित होने वाले ईश्वर के जन्म को इन भक्ति-कथाओं, किंवदन्तियों और काव्यमय रूपकों से सजायी गयी रचनाओं ने मात्र अलौकिक बनाकर उसका कोई भी पक्ष लौकिक और व्यावहारिक नहीं रहने दिया है, जबकि स्वयं श्रीकृष्ण 'अहम् ब्रह्मास्मि' के ज्ञान द्वारा जीवमात्र को जीवन के व्यावहारिक पक्ष से केवल आन्दोलित ही नहीं करते, जीवन का अलभ्य रहस्य-बोध भी कराते रहे हैं।

'कारावास' में श्रीकृष्ण जन्म के समय की परिस्थितियों को देवकी-वसुदेव के घोर कष्टों तथा मथुरा गणसंघ मे व्याप्त जन-असन्तोष से जोड़कर देखने-जानने की व्यावहारिक चेष्टा मैंने की है। श्रीकृष्ण अलौकिक थे, इसमें मुझे तनिक मात्र सन्देह अथवा शंका नहीं ; किन्तु उन्होंने मनुष्य रूप में अवतरित होकर मनुष्यवत् लीलाएं की हैं! यह मेरी ही नहीं अनेक बुद्धिमानों, लेखकों और चिन्तकों की व्याख्या एवं मान्यता है।

'श्रीमद्भागवत्' के दशम स्कन्द में भगवान श्रीकृष्ण के जन्म-समय की प्राकृतिक स्थितियों, कंस द्वारा देवकी-वसुदेव की सन्तानोंको नष्ट किए जाने की घटनाओं तथा जिन स्थितियों में श्रीकृष्ण 'कारावास' से बाहर

निकाले गये, उनका भी वर्णन किया गया है। उसकी पौराणिक वर्णन कला से परे होकर, यदि उन्ही सदर्भों को व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाये, तो लगता है, जैसे बालक श्रीकृष्ण को योजनाबद्ध रूप से निकाला गया था। यह पहलू अलग और निस्सन्देह अलौकिक है कि उस समय प्रकृति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए थे, बहुतेक लोगों के मन-मस्तिष्क में भी विशिष्ट प्रकार से परिवर्तन हुआ और वह सब सहज न होकर विस्मयकारी था। ऐसा क्यों, किस कारण और कैसे हुआ, इसका कोई तर्क नही मिलता और इन परिवर्तनो को केवल संयोग भी नही कहा जा सकता, क्योंकि संयोग यदा-कदा ही होते हैं। इस तरह कभी नही होते कि उनमें क्रमबद्धता पैदा हो जाये और हर संयोग एक विशिष्ट व्यक्ति की जीवन-रक्षा का कारण बने। प्रस्तुत खंड में मैंने यथासंभव यही सब वर्णित करने की चेष्टा की है।

वस्तुस्थिति में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा गणसंघ ही नही, सम्पूर्ण भरत खंड में व्याप्त उस घोर असन्तोष और अस्थिरता की स्थितयों में हुआ था, जिसमें सभी ओर निराशा फैली हुई थी। मानवीय स्नेह, सम्बन्ध, संवेदन यहां तक कि जीवन-जगत के मूल्य भी धीमे-धीमे केवल स्वार्थों का समझौता बनते जा रहे थे। विशृंखलित हो रहे थे। सत्ता और निजी स्वार्थों के समझौतों में साधारण जन पिसता जा रहा था। राजाओं के परस्पर हिताहितों की होड़ और वैमनस्यता ने राष्ट्रीय अस्मिता को भी खतरे में डाल दिया था। जन-साधारण के बीच नेतृत्वहीनता की स्थिति बनी हुई थी। करोड़ों लोग हताशा की ऐसी स्थिति में किसी 'उद्धारक' की बाट जोह रहे थे। उस स्थिति मे असामान्य ढंग से प्राकृतिक उत्पातों में जनमने और रक्षित रह जाने वाले बालक श्रीकृष्ण एक चमत्कार की तरह पहचाने गये। उस समय तो उनके इस चमत्कार पूर्ण जन्म को कम लोगों ने जाना और समझा; किन्तु बाल्यावस्था की अद्भुत लीलाओ के क्रम ने उन्हें जन-विश्वास का केन्द्र-बिन्दु बनाया।

केन्द्र-बिन्दु बनने की प्रक्रिया के पूर्व कृष्ण के जन्म की अद्भुत संयोगों से पूर्ण कथा इस खंड मे पाठक मित्र पायेंगे।

५३/१४, रामजसरोड,करौलबाग,
नई दिल्ली—११०००५

—रामकुमार भ्रमर

कारावास

बकुल ने सहमते-सहमते दृष्टि उठाकर मगधराज की ओर देखा। लग रहा था, जैसे अग्नि-तेज से पूर्ण किसी ऐसे प्रकाश को देख रहा है, जो दृष्टि को टिकने नहीं देता। यह पहला अवसर था, जबकि वह जरासन्ध के चेहरे को क्षण से कुछ अधिक समय तक देख पाया था। कितने दिनों से मन इसी इच्छा को लिये-दिये उत्साहपूर्वक राजकर्म किये जा रहा था। कोई तो अवसर आयेगा, जब वह भरतखंड के सर्वाधिक प्रतापी और शक्तिशाली व्यक्तित्व को आंखें भरकर देख सकेगा?

और एक बकुल ही क्यों, बहुतों के मन में बहुत समय से यही इच्छा थी। विशाल देहयष्टि वाले प्रभावी राजव्यक्ति को दृष्टि सहेजकर देखें। समझने का प्रयत्न करें कि मनुष्य होते हुए भी वह अतिमानवीय शक्तियों, क्षमताओं और गुणों से पूर्ण क्यों हैं? क्या है उन तेजमयी आंखों में? ऐसा क्या कारण है कि मगधराज जरासन्ध दूर-सुदूर, यहां तक कि कुरुवंशी प्रतापी भीष्म की तरह चर्चित है?

पर न कभी समझ आता था, न ही कभी समय मिलता। मिल भी जाता, तो सहसा जरासन्ध की कौंधती, असंख्य विद्युत्किरणें उगलती दृष्टि सामने वाले को सकपकाकर आंखें झुका लेने को बाध्य कर दिया करती।

बकुल के साथ भी यही हुआ। मथुरा से अपना समूचा गुप्तचर दायित्व सफलता के साथ निवाहकर लौटा था वह। इसी सफलता ने साहस जगाया था मन मे, इस बार अच्छी तरह मगधपति के व्यक्तित्व को देख-परख लेगा, पर जैसे ही दृष्टि मिली, अकचकाकर झुक गयी। जरासन्ध शान्त थे। उससे भी कहीं अधिक सहज। क्रोध अक्सर उन्हें आता न था, किन्तु जब

आता, तब वज्र की तरह वातावरण पर शब्द बरस उठते थे। ये शब्द किस व्यक्ति, सत्ता, शक्ति और राज्य को अपने बोझ तले दबोच लेंगे, कह पाना कठिन था।

जरासन्ध ने शान्त स्वर में पूछा था, "मुझे विश्वास है कि तुम सफल हुए होगे।"

"हां, महाराज!" बकुल ने गिड़गिड़ाकर जवाब दिया था। बहुत प्रयत्न किया कि स्वर शरीर की तरह सहमे नहीं, किन्तु ठीक समय न जाने क्या हुआ? आवाज विचित्र-सी सकपकाहट से भर उठी, उससे कहीं अधिक कांप गयी और उससे भी ज्यादा थर्रा भी उठी।

"देवी मानसी ने मगध के शुभार्थ बहुत बड़ा बलिदान किया!" जरासन्ध बोले थे। ऐसे, जैसे कोई चट्टान दरकी हो। दरकने का स्वर भी हुआ हो; किन्तु वह भी भीषण कोलाहल करता हुआ। बोलते-बोलते उठ भी पड़े थे वह। कक्ष में केवल बकुल था और मगधपति। बकुल की ओर से पीठ करके खड़े हो गये थे वह।

बकुल ने साहस संजोया, पीठ की ओर देखा। लगता था कि वह भी दमदमा रही है। तेज के अतिरिक्त स्वर्णभूषणों पर जहां-तहां से गिरते प्रकाश ने अनेक तारों की झिलमिलाहट पैदा कर दी थी उस पर। कहा, "हां, सम्राट्! मानसी ने बहुत बड़ा त्याग किया!"

"हम प्रसन्न हैं, बकुल! बहुत प्रसन्न हैं!" सहसा जरासन्ध मुड़े। लगा कि आंधी ने गति बदल दी है अपनी। कहा, "मानसी की स्मृति में एक शोक-सभा आयोजित की जानी चाहिए! यों भी जब-जब मगध के लिए किसी मगधवासी स्त्री-पुरुष ने त्याग किया है, तब-तब उसे राजसम्मान दिया जाना मगध की परम्परा रही है, फिर मानसी तो मगध के लिए बहुत कुछ करके मृत हुई!"

बकुल का मन जाने क्यों घृणा से भर उठा। जी हुआ कि कहे—"सम्राट्! यह ढोंग करना क्या आवश्यक है? मृत्यु पूर्व और मृत्युपश्चात् भी राजनीति का यह घिनौना चक्र मनुष्य को मुक्त क्यों नहीं करता? मानसी ने बलिदान किया नहीं, बल्कि सच तो यह है कि मानसी को बलि दे दिया गया है। केवल मगध के सुख-समृद्धि हेतु मानसी के प्राण ले लिये गये हैं!"

पर वह चुप रहा। अधिक सहमा हुआ। अधिक भयभीत। लगा था

कि मगधराज ने विचार भी सुन लिया होगा। जरासन्ध की तीखी दृष्टि और तीव्र बुद्धि बहुत कुछ पढ़ने, सुनने और समझने में कुशल है। डर गया था वह। तनिक-सा सन्देह मगधराज के माथे में किसी भी दुर्योजना को जन्म दे सकता है। षड्यन्त्र का प्रारम्भ भी बन सकता है, फिर बकुल जैसे साधारण व्यक्ति के लिए तो वह भी आवश्यक नहीं। राजा की पलक उठेगी और बकुल के प्राणपंछी अज्ञात यात्रा पर चल पड़ेंगे। और फिर एक शोक-सभा का आयोजन कर देंगे मगधराज! दुःख भी व्यक्त करेंगे, श्रद्धांजलि भी देंगे! थूक का घूंट निगलकर चुप हो रहा।

जरासन्ध उसी ओर देखे जा रहे थे, उसी की ओर…कुछ पल देखते रहे। बकुल को लगा था कि दृष्टि कई नुकीले भालों की तरह कपड़ों के पार शरीर तक भेद कर उसके भीतर उभरा विचार पढ़ रही है। अनेक दृष्टि किरणें हैं, जो अन्तर्यामी शक्ति से सम्पन्न है। वे बकुल के मन को भी समझ रही हैं। मन में उलझे, छिपाये गये विचार शब्दों को भी पकड़ लिया है उन्होंने। सनसनी से भर गया बदन।

"बकुल!" सहसा जरासन्ध का भारी स्वर पुनः गूंजा।

"सम्राट्।" वह कांपा।

"जानता हूं उस क्षण तुम बहुत दुःखी और आहत हुए होगे, जिस क्षण देवी मानसी का रथ क्षतिग्रस्त हुआ; पर भावुक होने की आवश्यकता नहीं है गुप्तचर! मगध अपने वीरों का सम्मान करना ही नहीं, उनके प्रति नत-मस्तक होना भी जानता है। क्या विचार है तुम्हारा?"

"जी, महाराज! हां-हां, मुझे ज्ञात है श्रीमन्! जानता हूं…।" बकुल की आवाज रुक-रुककर बहने लगी थी—"निस्सन्देह मुझे भावुक नहीं होना चाहिए। यह…यह भावुकता का समय भी नहीं है। देवी मानसी के परि-जनों तक संवेदना पहुंचाने का समय है।"

"तब तुम वही करो!" मगधराज बोले थे। यह बोलना नहीं था, धकेलना था। एक तरह से जोर के साथ दरवाजे के बाहर तक उछाल देना था।

और उछला चला गया था बकुल बाहर। मगधराज के विशेष विचार कक्ष का भव्य द्वार बन्द कर दिया गया था। कुछ क्षण बकुल थूक के घूंट निगलता और वेग से बहने लगी अपनी श्वासों को संयत करता हुआ द्वार के बाहर खड़ा रहा, फिर चल पड़ा।

लग रहा था कि चाल संयत नही है। उससे भी अधिक मन असंयत है; पर बकुल अपनी नियति जानता है। चलना और निरन्तर चलते हुए मगधराज का आदेश निबाहना ही उसकी नियति! इसके अतिरिक्त चेष्टा करना भी उसके वश मे नही, विचार करना भी।

बकुल जा खड़ा हुआ था मानसी के गृह पर। इकलौती बेटी थी माता-पिता की। उसी पर सम्पूर्ण आशाएं, आकांक्षाएं यहां तक कि जीवन भी आश्रित था उनका और बकुल को एक अशुभ समाचार देना था उन्हें। मानसी के अन्त का समाचार!

उस तरह नही, जिस तरह सब कुछ हुआ था, बल्कि उस तरह, जिस तरह जरासन्ध ने आयोजित किया था। एकदम स्वःभाविक लगने वाली घटना-कथा!

☐

वे वृद्ध थे। कृशकाय भी। बकुल ने उन्हें पूर्व में भी देखा था। उससे कही अधिक जाना-समझा था। जिस क्षण मानसी को गुप्तचर के रूप में मथुरा भेजा गया, उसी समय से उसके माता-पिता पर दृष्टि रखी जाने लगी थी। क्या सोचते हैं वे? क्या करते हैं? किनसे भेंट होती है उनकी और क्यों होती हैं? यह सभी कुछ मुख्य गुप्तचर तक सूचित किया जाता। उन्हें बिलकुल नही बतलाया गया था कि मानसी को मथुरा भेजा गया है। केवल इतनी सूचना दी गयी थी कि मानसी मगध की मुख्य नर्तकी के रूप में विभिन्न मित्र राज्यों का दौरा कर रही है। वह उस विशिष्ट सभासदों की मण्डली के साथ गयी है, जो कि मगध और पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध सुधारना चाहते हैं। मगध की कला और कलाकार भी इन सम्बन्धों के सुधार में सहायक हो सकते हैं।

पर लगता था कि बहुत शक्तिशाली तर्क नहीं है। एक न एक दिन वह जरूर जान जायेंगे कि मानसी कहां है, किस हाल मे है और उसकी क्या उपयोगिता रही है? ऐसा विचार कर ही गुप्तचरों को उन पर कड़ी दृष्टि रखने के आदेश दिये गये थे।

वे बहुत सरल निकले। उससे कहीं अधिक सहज। मगधराज की कूट नीति पर भी विश्वास कर लिया था उन्होंने। विश्वास किया था या कि विश्वास जतलाते रहे थे? बकुल ने सोचा, हो सकता है कि सब कुछ जान-समझकर भी चुप रहना उचित समझा हो उन्होंने? बहुतों की तरह वह

भी तो जानते हैं कि मगधराज जरासन्ध की क्रूर राजनीति में स्वजन हो या साधारण-जन, उनका जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होता। महत्त्वपूर्ण होती है, केवल नीति। वह नीति, जिस पर सम्पूर्ण मगध का राजचक्र घूमता है। विशाल साम्राज्य की धुरी यह नीति विश्वासहीनता के विश्वास पर ही चलती है।

अनायास बकुल को लगा था कि वह अनधिकार चेष्टा कर रहा है। मगधराज ने क्या कहा या क्या किया, इस सब पर विचार करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। उसके वश में है केवल राजाज्ञा का पालन। यही उसका धर्म है, यही उसका कर्म। इससे अधिक विचार की शक्ति उसके पास नहीं। इससे अधिक सोचना-समझना भी उसका अधिकार नहीं।

पर मनुष्य का भी तो कोई अधिकार होता है? क्या उसके अपने विवेक, व्यक्तित्व और उसके मानवीय गुणों का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता? बकुल ने तर्क करना प्रारम्भ कर दिया था। बकुल का तर्क बकुल के गुप्तचर के लिए। इससे भी आगे एक मनुष्य का तर्क सहज मनुष्यमात्र के लिए।

वह सब न करे तो अच्छा हो। मन ने कहीं गुनगुनाकर कहा था, ऐसा करके वह कमजोर होने लगेगा। यह कमजोरी कर्त्तव्य-धर्म के निर्वाह में बाधक बनेगी और वह है राज-कर्मचारी। मगध के लिए समर्पित सेवक।

किन्तु सेवा और मानव मूल्यों में क्या कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं होता? क्या सेवक मनुष्य से इतर भी कुछ हो सकता है? सेवा का अर्थ यह तो नहीं कि भावनाशून्य हो जाया जाये? केवल पाषाण-प्रतिमा बन जाये आदमी?

बकुल बेचैनी अनुभव करने लगा है। यह बेचैनी पहले तो कभी मन में जनमी नहीं। सदा ही यन्त्र की तरह राजाज्ञा का पालन करता आया है वह; पर अनायास कहां से, किस तरह कोमल कोंपल-सी मन में फूट पड़ी है, बकुल को नहीं मालूम।

जी हुआ था कि इस कोंपल को कठोरता के साथ रौंद डाले। उसी निर्ममता और कठोरता के साथ, जिस तरह अनेक बार उसने अपने भीतर उठते किसी उचित-अनुचित के द्वन्द्व को रौंद डाला था।

पर लगा कि इस बार यह नहीं हो सकेगा? कैसे हो सकता है? अजाने ही सही; किन्तु कहीं-न-कहीं वह अपने-आप को एक

या मागधी नागरिक से अधिक हत्यारा अनुभव करने लगा है। मानसी का हत्यारा ! कोमलांगी और सुन्दरी मानसी मरी नहीं थी, मारी गयी थी। तिस पर राज्य के प्रति उसके बलिदान का यह आयोजित ढोंग भी बकुल ही करने जा रहा है ? छि: ! उसे अपने से ही घृणा होने लगी।

चाहकर भी सीधा मानसी के माता-पिता तक नहीं जा सका था वह। राजपथ से जनपथ पर आकर एक उद्यान में रथ रोक लिया था उसने। कुछ पल यहीं थमकर मन को सहज करेगा। उससे कहीं अधिक शान्त। उसके बाद निर्णय लेगा कि क्या करे और क्या न करे ?

निर्णय''' ? सहसा अपने आप पर विद्रूप हंसी उभर आयी थी मन में। निर्णय''' ? भला वह क्या निर्णय लेगा ? मगध के सम्राट की आज्ञा पर क्या कोई निर्णय लिया जा सकता है ? यह दुस्साहस, जो अनेक राजा नहीं कर सके, तब बकुल ? एक अति साधारण सेवक ? बकुल क्या निर्णय करेगा ?

नहीं, निर्णय तो नहीं ही कर सकेगा वह। केवल मन को शान्त करने की चेष्टा करेगा। मन शान्त किये बिना ठीक तरह मानसी के माता-पिता की उन आंखों का सामना करना असम्भव होगा, जो मानसी के निधन का समाचार सुनकर उसकी ओर उठेंगी।

वह थका हुआ-सा उद्यान में बैठा रहा। कोमल घास पर हौले-हौले हथेलियां फिराता हुआ; किन्तु विचित्र बात थी। घास अपनी कोमलता का भी कोई प्रभाव हथेली पर नहीं कर पा रही थी। इसके विपरीत लग रहा था कि कई अदृश्य शूल हैं, जो शरीर के हर हिस्से में लग रहे हैं। पीड़ा और पश्चात्ताप के शूल ! इन शूलों से मुक्ति नहीं मिलेगी ! कैसे मिल सकती है ? सेवाधर्म ने मनुष्य-धर्म को ही हत कर डाला है।

और इसी हतावस्था में बकुल ने मानसी को मारा। दृष्टि के सामने दृश्य उभरने लगा था। कानों में उसके अपने ही शब्द थे। वे शब्द जिनके छल-जाल में मानसी को उलझाकर बकुल ने उसका वध किया था।

अनायास ही बुदबुदा उठा था वह—'नहीं-नहीं, मैंने वैसा नहीं किया ! वह सब तो मगधराज की आज्ञा थी, मेरा अपना कुछ भी नहीं !'

क्या सच ही ? मन में प्रश्न पुन: कौंधा था और लग रहा था कि यह कौंध इस जोर से उसके अपने अन्तर को थर्रा गयी है कि वह शब्द रिक्त हो उठा है। उत्तर हीन ! भला छल भी स्वयं को छल सकता है ?

इसलिए बकुल भी बकुल को छल नहीं सकता। केवल पश्चात्ताप कर

सकता है।

पश्चात्ताप ही क्यों ? क्या प्रायश्चित्त नहीं कर सकता वह ? उसके अपने भीतर से प्रश्न पुनः कौंधा। अनायास ही वह रिक्त दृष्टि होकर सूने अनन्त आकाश की ओर देखने लगा। शब्द कौंध रहे थे, प्रायश्चित्त ! प्रायश्चित्त ! प्रायश्चित्त !



देर बाद एक दृढ़निश्चय ने जनम लिया था बकुल के भीतर। हाँ, प्रायश्चित्त अवश्य ही करेगा वह। राजनीति प्रेरित हत्या का कारण भले ही न रहा हो वह; किन्तु हत्यारा अवश्य है। सरलहृदया मानसी का हत्यारा !

पर इस प्रायश्चित्त के पूर्व वह राजधर्म भी पूरा करेगा। मानसी के माता-पिता तक वह शोक-सूचना अवश्य पहुंचायेगा, जो महाराज जरासन्ध ने भिजवाया है। वह उठा था। निश्चित और उससे भी कहीं अधिक आश्वस्त। अब उसे न उन कातर माता-पिता की दृष्टियों से भय लगेगा, न संकोच होगा। वह सब कुछ उसी तरह उगल देगा, जिस तरह मगधराज ने कहलवाया है। वही शब्द, उसी तरह, उसी भाव से।

छल होते हुए भी वह उन्हें छलेगा नहीं। छल मुक्ति के निश्चय का भाव जो मन में बैठ गया है ? प्रायश्चित्त के पश्चात् वह निश्चय ही इस पाप-बोध से मुक्ति पा जायेगा।

बकुल इसी तरह रथ तक पहुंचा, फिर रथ संचालित करता रहा और फिर मानसी के घर पर था। दो पल बाद उसके माता-पिता के सामने। प्रणाम किया था उन्हें। स्वर में शक्ति संजोयी, कहा था, "मुझे खेद है वृद्धवर ! एक दुःखद समाचार लेकर आया हूं।"

वे हतप्रभ-से देखते रहे थे उसे। दुःखद ?…भला मानसी के अतिरिक्त सुखद या दुःखद क्या हो सकता है उनके लिए ?

बकुल ने बहुत चाहा कि दृष्टि न झुके। उनकी आंखों से आंखें मिली रहें; किन्तु जिस क्षण शब्द होंठों से बाहर निकले, उसी क्षण दृष्टि झुक गयी थी। होंठों पर अजब-सा कम्पन उभरा था, फिर महसूस हुआ था, जैसे पूरा गला ही भर्राया हुआ है। बोला था, "वृद्धवर ! देवी मानसी का रथ गिरिव्रज के मार्ग पर क्षतिग्रस्त हो गया और वह स्वर्गवासी हुईं !"

वे न चीखे, न रोये और न ही तड़पे। अब बकुल ने कहना

किया तब उन पर इन्हीं सब प्रतिक्रियाओं का अनुमान किया था उसने; किन्तु···!

आश्चर्य···! वैसा कुछ नहीं हुआ था। इसके विपरीत वे शान्त बैठे रहे थे, चुप। केवल एक-दूसरे को देखा था वृद्ध दम्पती ने, फिर गहरा श्वास लिया था, बस!

बकुल हड़बड़ी में आगे कुछ सोच न सका था यों कि कल्पना से विपरीत प्रतिक्रिया पाकर वह इतना सिटपिटा गया था कि अधिक कुछ सोच नहीं सका। यहां तक कि आगे क्या कहना है, वह भी स्मरण न कर पाया। उतना ही स्तब्ध होकर वह उन्हें देखने लगा था।

विचित्र-सा खालीपन फैल गया था उस घर में। तीन व्यक्ति थे वहां। सब जीवन्त, किन्तु सब मृतवत्। भरापूरा, सुन्दर भवन; पर श्मशान-जैसा प्रभाव। सहसा वृद्ध हंसा, इतना हंसा कि रुआंसा हो गया। वृद्धा चुप थी। उसकी पुतलियों पर आंसू भी नहीं थे। थी केवल मरुथल जैसी रुखाई। बकुल हतप्रभ हो रहा।

वृद्ध ने कहा था—"तुम क्या समझते हो राजसेवक! हम इस समाचार को सत्य मान लेंगे?"

बकुल का मुंह खुला रह गया! क्या अर्थ है वृद्ध के उन शब्दों का। न कुछ पूछते बना था उससे, न ही तुरन्त वृद्ध ने कुछ कहा था।

कुछ क्षणों के लिए सन्नाटा बिखरा रह गया।



"हमारी पुत्री का अन्त इसी तरह होगा, हमें मालूम था राजसेवक!" सहसा वृद्ध बोले थे। उनके स्वर में कठोरता थी, उससे कहीं अधिक रुखाई। "गुप्तचर-धर्म में यही होता है, पुत्र!···और कभी-कभी तो यह धर्म केवल अधर्म का आश्रय पाकर ही धर्म बनता है।"

"आप···आप कहना क्या चाहते हैं वृद्धवर!" न चाहते हुए भी बकुल बड़बड़ाकर पूछ बैठा।

"बैठो!" वृद्ध पुनः बोला और बकुल न चाहते हुए भी इस तरह बैठा रहा, जैसे किसी ने उसे कन्धों से दबाकर बैठने के लिए लाचार कर दिया हो।

वृद्ध ने कहा था, "राजसेवक, तुम क्या समझते हो कि हमें ज्ञात नहीं था कि हमारी पुत्री क्या कर रही है? हम जानते थे। उसी क्षण से जानते

थे, जब वह एक अभिनेत्री से सहसा मगधराज की दृष्टि में अनायास ही महत्त्वपूर्ण हो गयी थी, फिर वह निर्णय भी हमें विचित्र नहीं लगा था, जब कि मानसी को मगध की कलावाहिका के रूप में दूर-सुदूर किसी देश में ले जाने की भूमिका बनायी गयी।"

"किन्तु···।" बकुल ने कुछ कहना चाहा; पर लगा कि शब्द नहीं हैं उसके पास। यदि हैं, तो वृद्ध और वृद्धा को रूखी, मरुस्थल-सी दृष्टि ने पी लिये हैं। केवल होंठों पर, जीभ फिराकर रह गया।

"सुनो, राजसेवक!" वृद्ध कहे गया, "मानसी के अतिरिक्त अनेक अभिनेत्रियां और नृत्यांगनाएं मगध में हैं, सदा रही हैं। उससे कहीं अधिक पारंगत और कलाकुशल। तब मानसी को ही मगध के प्रतिनिधित्व हेतु ले जाया जाना, क्या अस्वाभाविक नहीं था? इस अस्वाभाविकता में ही मानसी के राजनीतिक उपयोग की स्वाभाविकता हमने समझ ली थी पुत्र! हम जान चुके थे कि मगधराज जरासन्ध की राजलोलुपता के दावानल में जिस तरह बहुतेक आहुतियां पड़ी हैं, मानसी भी एक आहुति हुई।"

बकुल ने शीश झुका लिया। अपने ही प्रति घिन से भर उठा। इस तीव्रबुद्धि वृद्ध तक किस निर्लज्जता के साथ असत्य बोलने आ पहुंचा वह? अब दृष्टि भी नहीं उठ पा रही है। मन हुआ कि स्वयं उठ पड़े; पर लगा कि वैसा कर पाना भी वश में नहीं। वृद्ध के व्यक्तित्व और बुद्धिकुशलता ने उसे जकड़कर रख दिया है। अब उनकी आज्ञा पाये बिना वहां से हट पाना भी असम्भव है।

"मानसी के इस निधन समाचार ने हमें उस बहुप्रतीक्षित समाचार की सूचना दे दी है, जिसे सुनने के लिए हम जी रहे थे।" वृद्ध ने गहरा श्वास लिया था, फिर चुप हो गया।

बकुल उठा। याद आया कि आगे भी बहुत कुछ कहना है। सूचना देनी है कि मानसी के असामयिक निधन पर राजा ने शोक मनाने के निर्देश दिये हैं; पर लगा कि कह नहीं सकेगा।

द्वार की ओर बढ़ा तब वृद्ध का स्वर पुनः उभर आया था, "हमें ज्ञात है राजसेवक! मगधराज मानसी के बलिदान पर शोक-सभा अवश्य आयोजित करेंगे और हम उस शोक-सभा में भाग भी लेंगे। तुम आश्वस्त रहो!"

बकुल को लगा कि द्वार से निकलते-निकलते, एक ठोकर खाकर गिर

पड़ा है वह। आश्चर्य ! मानसी का वृद्ध पिता जरासन्ध की नीति को इतना कुछ जानता-समझता होगा। बकुल ही क्या, कोई नहीं सोच सकता।

गरदन लटकाये हुए वह लौट पड़ा था अपने निवास की ओर; पर रह-रहकर वृद्ध प्रश्नचिह्न बना मन में घुमड़ रहा था। आखिर कैसे जान सका कि मगधराज जरासन्ध का यह नीतिचक्र पुराना है ? बहुत पुराना।

लगा था कि निश्चय ही वृद्ध कभी सम्राट के बहुत विश्वस्तों में रहा होगा। न भी रहा हो, तो उसने जरासन्ध को गहरे, खूब गहरे तक समझा होगा। अनजाने ही बकुल के भीतर वृद्ध को लेकर बहुत कुछ जानने की इच्छा उभर आयी।

क्या नाम है उसका ? क्या करता था वह ? क्या कभी राजसेवा में भी रहा था ? हो सकता है कि जरासन्ध के समय न रहा हो; किन्तु महाराज बृहद्रथ की सेवा की हो उसने और उसी समय जरासन्ध को समझा हो ?

पर इतने गहरे तक ? बकुल की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। जो समझ में आया, वह केवल इतना था कि प्रायश्चित्तस्वरूप उसे अब उन वृद्ध दम्पती की सेवा-सहायता करते रहना है, जो मानसी के न रहने पर निराश्रित हो गये हैं, फिर बार-बार वह वृद्ध बकुल को पुत्र भी तो सम्बोधित कर रहा था।

शब्द पुनः कानों में गूंजने लगा है। वृद्ध की थरथराती आवाज— 'पुत्र !'



शोक-सभा हुई। मगधराज जरासन्ध स्वयं उपस्थित हुए थे सभा में। वृद्ध दम्पती भी आँखों में मरुथल लिये आये। अश्रुहीन और भावहीन, यहाँ तक कि प्रतिक्रियाहीन रहकर उन्होंने वह सब सुना, जो उनकी स्वर्गवासी पुत्री के बारे में राज्यादेश के अनुसार कहा जा रहा था, फिर वह घोषणा भी सुनी, जब सम्राट ने गौरवोचित स्वर में कहा था—"मानसी के वृद्ध माता-पिता का जीवन-दायित्व अब मगध के राजकोष पर है। उन्हें जब, जितनी भी आवश्यकता होगी, मगध की ओर से मुद्रा सहायता दी जायेगी।"

सभाजनों ने हर्षोल्लास के साथ मगधराज की घोषणा का स्वागत किया; पर बकुल ने देखा कि वृद्ध और वृद्धा उसी तरह जड़ भाव से खड़े हुए हैं। न चेहरे पर हर्ष दीखता है, न विषाद। इस तरह निश्चिन्त और

मुक्त, जैसे यह सब अनेक बार, अनेक तरह उन्हें देखने, सुनने और जानने को मिला हो। सब जाना हुआ और सब समझा हुआ।

राजरथ में ही वृद्ध दम्पती को उनके निवास पर पहुंचा दिया गया था। समारोह के समय बकुल जितना चकित हुआ, उससे कहीं अधिक उसे राजनीति के इस घिनौने चक्र से घृणा हुई। कितना ओछा, छिछला और घिनौना है यह सब ! असत्य को सत्य की तरह घोषित किया जाना, पाप को पुण्य के रूप में प्रचारित करना। छल को कपड़िस से लिपटे चेहरे पर स्वर्णजटित मुकुट धारण करना।

मन ने कितनी ही बार चीखकर विद्रोह कर देना चाहा था—'यह सब असत्य है ! केवल छल !'

पर लगा था कि मूर्खता होगी। असंख्य लोगों के सामने जिस तरह असत्य को सत्य प्रतिष्ठित किया गया है, क्या उस तरह सहज ही सत्य को उद्घाटित किया जा सकता है ? और क्या बकुल की इकलौती आवाज इस असत्य के कोलाहल और जय-जयकार में सुनी जा सकती है ? असंभव !

और इस राजनीतिग्रस्त वातावरण में क्या सत्य इतना शक्तिसम्पन्न रह गया है कि वह असत्य को उस तरह उद्घाटित कर सके ? लगा था कि नहीं। कैसी बाध्यता और कैसी अवश स्थिति है यह ! सत्य—असत्य का मोहताज होकर रह गया है। याचक की तरह चाव से खड़ा भिक्षु और भिक्षादान दे रहे हैं वे हाथ, जो राजनीति के कलुष से भरे हुए हैं या कि केवल कलुष की राजनीति बन चुके हैं।

सभा-समाप्ति के साथ ही जब वह निवास की ओर चला, तो रथारूढ़ होते समय ही सूचना मिली थी उसे—"सम्राट स्मरण कर रहे हैं गुप्तचर !"

और बकुल ने रथ पर रखा पांव खींच लिया था। चुपचाप चल पड़ा था मगधराज के भेंट-कक्ष की ओर। अब कौन-सा दायित्व सौंपा जायेगा उसे ? क्या कोई और हत्या करवायी जायेगी उससे ? पर अब बकुल वह सब नहीं करेगा।

किन्तु जो कुछ सोच रहा है, वह कह सकेगा बकुल ? मन ने पूछा।

उत्तर में पुनः शून्य से भर उठा वह। यह शून्य न तो सोचने में सामर्थ्यवान है, न समझने में। शब्दहीन है वह, केवल रिक्त ! इसी रिक्तता को संजोए आ खड़ा हुआ था मगधराज के सामने। वे पीठ मोड़े हुए

थे उसकी ओर से।

□

सम्राट मुड़े। उनके साथ ही जैसे सम्पूर्ण वातावरण मुड़ा। वह बोले थे—"बकुल ! मगध की तुमने बहुत सेवा की है और कुशलता से भी की है; पर अभी एक महत् दायित्व शेष रह गया है, वही पूरा करने के लिए हमने तुम्हें स्मरण किया है।"

न चाहते हुए भी पूछ लिया था उसने—"आज्ञा, सम्राट् !"

"मथुराधिपति कंस हमारे मित्र हुए, यह परम प्रसन्नता की बात है; किन्तु उससे भी अधिक प्रसन्नता की बात तब होगी, जब वह हमारे संबंधी भी बनें।" जरासन्ध ने कहा था—"यह राजनीतिक सम्बन्ध जब पारिवारिक सम्बन्ध में बदल जायेगा, तब निश्चय ही महाराज कंस की विशाल शक्ति मगध के लिए उपयोगी और सहायक सिद्ध होगी।"

बकुल चकित-सा उन्हें देखता रहा !

"हमारी इच्छा है कि वह हमारी पुत्रियों से विवाह कर लें। देवी अस्ति और प्राप्ति गुणवती हैं, सुन्दर हैं और उससे भी अधिक नीतिज्ञ हैं। निश्चय ही मथुराधिपति इस सम्बन्ध का प्रस्ताव पाकर प्रसन्न होंगे। हमने निश्चय किया है कि प्रतापी महाराज बृहद्रथ के गौरवशाली कुल के लिए उन जैसे योग्य राजा का सम्बन्धी बनना ही श्रेष्ठ होगा। कल तुम राजपुरोहित के साथ पुनः मथुरा की यात्रा पर जाओ और उन्हें हमारी इस इच्छा से अवगत कराओ।"

बकुल मुंह बाये देख रहा था मगधपति की ओर। कंस को दामाद बनाने के पीछे भी बहुत कुछ सोचा-समझा होगा जरासन्ध ने। भला यह कौन-सा जाल है ! तह तक नहीं पहुंच सका। तुरंत पहुंच पाना संभव भी न था। केवल चुप खड़ा रहा।

"राजपुरोहित को आदेश दे दिये गये हैं।" महाराज जरासन्ध ने कहा था, फिर मुड़ गये। स्वर गूंजे—"तुम कल प्रातःकाल ही प्रस्थान की तैयारी कर लोगे।"

"जैसी आज्ञा, महाराज !" बकुल ने सिर झुका दिया। मुड़ चला।

"और सुनो, बकुल !" जरासन्ध की आवाज पुनः गूंजी। बकुल हड़बड़ाकर ऐसे मुड़ा, जैसे किसी ने गतिशील रथ की लगाम खींच ली हो। पलटटाकर पैर अचानक ही थमने को बाध्य हो गये हों।

जरासन्ध मुड़ चुके थे। बकुल ने कौंधती, बिजलियों की असंख्य तरंगों जैसी तीखी किरणें अपने भीतर समाते हुए अनुभव कीं। इन किरणों से जुड़े हुए थे शब्द—"हमें ज्ञात है बकुल! मथुराधिपति कंस इन दिनों बहुत व्याकुल हैं। सुन्दरी मानसी के प्रेम ने बहुत विह्वल किया है उन्हें और यही अवसर है, जबकि हमारा धर्म है, मैत्रीभाव से उनके अशांत मन को शान्त करें।"

विस्मय से एक बार पुनः मुंह खुला रह गया बकुल का। आश्चर्य! क्या जरासन्ध को ज्ञात था कि मानसी कंस के प्रेमजाल मे उलझ गयी है या कि कंस ही उसके प्रेमजाल मे उलझ चुके हैं और यदि ज्ञात था, तब क्या बकुल के अतिरिक्त भी कोई अन्य गुप्तचर इस सेवा के लिए तैनात था? बकुल बुरी तरह सहम गया। उससे कहीं अधिक डर भी गया। हे ईश्वर! कितनी तहों और कितनी परतों तक गहरे हैं मगधराज!

जरासन्ध बोले थे—"ऐसे समय पर हमारी पुत्रियां निस्सन्देह ही मथुराधिपति के अशान्त मन को शान्त कर सकेंगी, फिर मित्र राजा के नाते यह हमारा धर्म भी है कि हम मथुराधिपति का विशेष ध्यान रखें।"

"हां, आप—आपने उचित ही विचार किया है महाराज!" बकुल किस तरह, कैसे शब्द जुटाकर बोल सका था, उसे ही पता नहीं। बस, इतना जानता था कि मगधराज की जानकारी की परतों ने उसे बुरी तरह डरा दिया था।

जरासन्ध आगे कुछ नहीं बोले। बकुल घबराया हुआ बाहर निकल गया।



निवास पर आकर भी बकुल शान्त नहीं रह सका। रह-रहकर मगधराज का नया आदेश उसे झकझोर जाता। नीति-चक्र ने एक बार पुनः मथुरा की राजनीति को लपेट लिया था। लपेटा-भर था कि पूरी तरह अपनी सर्वग्राही क्षुधा-वृत्ति मे समेट लिया।

मगध की राजकुमारियां भी राजनीतिक मोहरा बनकर रह गयी थीं। कैसी विचित्र स्थिति है! बकुल सोचता और चमत्कृत हो उठता। क्या सोच-विचार में समर्थ, जीवंत मनुष्य को भी वस्तु की तरह उपयोग किया जा सकता है? लगता था कि अमानवीय है यह क्रिया! नितान्त संवेदन-शून्य!

पर सत्य यही है। यही हो रहा है। केवल यही क्यों, सभी जगह, सभी राज्यो, राजाओं और राजनीतिज्ञों की चौसर पर यही होता है। स्त्री हो या पुरुष, उसका अपना कोई व्यक्तित्व, कोई रूप, कोई चेहरा नही होता। केवल होती है उनकी उपयोगिता। कब, किस खाने को भरने के काम आ सकते हैं वे, कितने उपयोगी हो सकते हैं, कितने स्वार्थ साध सकते हैं, केवल इसी कारण उनका प्रयोग किया जाता है!

मथुरा मे भी तो यही कुछ हुआ था? बकुल को अनायास ही स्मरण हो आया। महाराज कंस ने अपने चाचा देवक की कन्या को राजनीति की चौसर पर लगा दिया। पांसे दर पासे। राज्य के अति-प्रभावशाली व्यक्ति से उसका विवाह केवल यह विचारकर आयोजित किया गया कि वह कंस का अनुयायी हो जाएगा। महाराज उग्रसेन के सर्वाधिक विश्वसनीय और गणसंघीय पद्धति के सबसे बड़े समर्थक को वश में करने के लिए देवकी दांव पर लगीं।

पर चौसर के पांसे ने ठीक तरह साथ नही दिया था यों कि वसुदेव ही चौसर से जीते जाने वाले खाने नही रहे, अतः उन्हें पहुंचना पड़ा कारावास में। विचार मात्र से बकुल सिहर उठा है। हे भगवान्! अपने ही बहन-बहनोई को कारावास पहुंचाते हुए तनिक भी संकोच नही किया कंस ने! कंस मनुष्य हैं या केवल राजनीति? संवेदन हैं या केवल जड़ राज-मुकुट?

जड़ ही कहना उचित होगा इन मनुष्यों को या कि ये मनुष्य राजनीति के हाथों पडकर अपनी सम्पूर्ण संवेदना खो बैठते हैं या कि राजनीतिज्ञ होने पर इन्हें संवेदनहीन हो जाना पडता है।

बकुल को लगता है कि राजनीति और सवेदना ये दो अलग धुरियां हैं। इन धुरियों पर जीवन भी अलग, जीवन-व्यवहार और व्यापार भी अलग। एक धुरी पर न कोई सम्बन्ध है, न विश्वास और दूसरी धुरी पर केवल सम्बन्ध हैं, केवल विश्वास। एक छोर मोह, प्राप्ति, कटुता, अहं और हिंसता की सीमा तक पहुचा कठोर मरथल, दूसरा छोर केवल ममता, समर्पण, त्याग, संवेदन और नेह का अजस्र सागर। दोनों के बीच परस्पर कोई सम्बन्ध नही। दोनों एक-दूसरे के विपरीत। बकुल अपने ही भीतर की ऊहापोह और प्रश्नोत्तरो में सन्तुष्ट हो गया था। पलकें मूदकर नींद का आवाहन करने लगा।

पर नींद नहीं आयी। इसके विपरीत एक और प्रश्न जनम आया मन में। कभी-कभी राजनीति की इस चौसर पर निर्दोष भी तो बलि दे दिये जाते हैं? न उनका संवेदन अर्थयुक्त रह जाता है, न भावना और न ही इच्छाएं। सब कुछ राजनीति की अदृश्य; किन्तु शक्तिशाली भुजाओं में जकड़े हुए उसी के चाहे चलते जाते हैं, उसी की इच्छित दिशा में।



पलकें खुल गयी बकुल की। शय्या पर आरामदेह बिछौना था; किन्तु जाने क्यों वह गड़ने लगा, अनेक शूलों की तरह।

बकुल उठा और फिर से एक बेचैन चहलकदमी प्रारम्भ कर दी उसने। मन को थामना चाहा था, अपने ही भीतर एक डांट उगाकर—'यह सब तो तुम्हारे विचार और विचार-क्षेत्र का विषय ही नहीं है बकुल! किसलिए विचारक्षेत्र की अनचाही सीमाओं में प्रवेश करके मन को अशान्त करते हो? बुद्धि कोई निष्कर्ष निकाल भी ले, तो उस निष्कर्ष का उपयोग क्या होगा? व्यर्थ माथापच्ची से लाभ?'

पर मस्तिष्क फिर भी वश में नहीं। क्या हुआ होगा देवकी और वसुदेव का? मथुराधिपति कंस ने उन्हें कारावास में डाल दिया था। किसी विश्वस्त सूत्र या भविष्यवाणी से उन्हें ज्ञात हुआ था कि वसुदेव-देवकी का पुत्र ही कंस के नाश का कारण बनेगा और नाश-भय ने कंस को मनुष्य की तरह नहीं, संवेदनशून्य राजनीतिज्ञ की तरह प्रभावित किया। केवल अपने हिताहित का विचार कर बहन-बहनोई को कारागृह की कठोर यातनाएं देने में भी नहीं चूका वह पाषाण-पुरुष।

बकुल एक बार फिर खलबली से भर उठा। मथुराधिपति कंस भी जरासन्ध से कम तो नहीं है। सुना था कि वसुदेव के विद्रोही हो चुके विशेष सेवक वसुहोम को ही मोहरा बनाया था उन्होंने। एक गहरा श्वास लेकर बकुल पुनः शय्या पर आ बैठा…। क्या हो रहा होगा वहां?

बहुत कठोर दायित्व सौंपा था वसुदेव ने। अविश्वास की अभिव्यक्ति कर, विश्वास का दायित्व। किसी-किसी बार मन विद्रोह करने लगता है। जी होता है कि कारावास में पड़े महामंत्री के सामने पहुंचे और दो टूक बात कह डाले—"अब यह सब असह्य हो गया है प्रभु ! मुझे क्षमा कर दें। न तो सहा ही जाता है और न देख पाने की शक्ति शेष रही है। विशेषकर उस स्थिति मे, जब कठोर कर्म के क्रूर आदेशों का निर्वाह करते हुए अपनी ही श्रद्धा को ताड़ित-प्रताडित करना पड़ रहा हो। मुझे इस दायित्व से मुक्ति दें।"

किन्तु व्यर्थ होगा कहना। न तो वसुदेव कुछ सुन सकेंगे और न ही शायद वसुहोम यह सब कह सकेगा। उलटे होगा यह कि मन को अधिक कठोर करके राजनीति के इस चक्र को और-और तीव्रगति से घुमाने को बाध्य हो जायेगा।

घुमाने या घूमने ? दोनों ही स्थितियां सही हैं। एक तरह से कालचक्र की ही गति है, जिसमें वसुहोम घूम भी रहा है और उसे घुमा भी रहा है। जिस क्षण एक शक्तिशाली आरोप जड़कर कंस के प्रति उसे सहसा विश्वसनीय बना दिया था वसुदेव ने, उसी क्षण चक्र का घूमना प्रारम्भ हो गया। या यों कि वसुहोम का ही चक्रवत् घूमना प्रारम्भ हुआ। तिस पर कंस ने और अधिक उलझा दिया था उसे। जिस कारागृह में देवकी-वसुदेव को बन्दी बनाया, उसी मे अधीक्षक नियुक्त कर दिया।

कारागृह अधीक्षक के नाते बहुतेक राजकर्त्तव्य उसके माथे आ पड़े। किसी बार यह कि महाराज उग्रसेन की सुधि ले और किसी बार यह कि देवकी-वसुदेव को लेकर कंस तक समाचार पहुंचाये। तब कैसा कष्ट होता है, जब वह देवकी और वसुदेव के सामने जा पहुंचता है। लगता है कि कई

अदृश्य शूल उसके बदन में जह[illegible] और इन शूलों की पीड़ा से वह मुक्त नहीं हो पा रहा है। किसी बार ये शूल देवकी की मासूम दृष्टि से लगते हैं और किसी बार वसुदेव की केवल प्रतिहिंसा में क्रोध कर वसुहोम के सीने में जा लगते हैं। [illegible] तरह टूट-बिखर गये हैं, जैसे ओस की बूँदें हों, बिखरी हुई [illegible] पीना और अनुभव कर पाना तो सम्भव है, किन्तु सहेज पाना असम्भव। संभव और असंभव का यह फेर ही वसुहोम की नियति बन गया है। न ठीक तरह कुशल-क्षेम पूछते बनता है, न ही किसी तरह अधीक्षकवत् आदेश देना सम्भव होता है। हर बार सीखचों के पार खड़े होकर रो पड़ने का मन होता है; किन्तु वह भी नहीं किया जा सकता। प्रहरी जो होते हैं वहाँ। महाराज कंस तक भले ही न पहुच सकें, किन्तु उनमें फैली बातचीत अवश्य ही कंस तक पहुच सकती है।

और कंस ठहरे एक शक्तिशाली, कठोर राजा; पर अपनी ही छाया से भयभीत राजपुरुष। मन किस करवट, क्या कुछ सोचेगा, क्या निर्णय कर लेगा, वह भी अनिश्चित। पल-भर में वसुहोम को लेकर प्रश्नवाचकों से भर जाएंगे? वसुहोम क्यों रोया? कौन-सी स्थिति थी, जिसने उसे इतना आन्दोलित किया? या यह कि कहीं वसुहोम के मन में दया तो नहीं उभर आयी? राजबन्दी के प्रति कारागार प्रबन्धक के मन में दया का उपजना भी परेशानी का कारण बन सकता है?...और फिर इस संदेह का कारण या कि कहीं वसुहोम अब भी वसुदेव का आदमी तो नहीं?

वसुहोम के लिए रोना भी कठिन। वसुहोम के लिए वसुदेव से इस कठिन परीक्षा में मुक्ति मांगना भी असंभव और वसुहोम के लिए यह सब निबाह पाना भी कठिन। विचित्र स्थिति है! न उगली जानेवाली, न निगली जानेवाली।

इसी स्थिति में बहुत दिन गुजर गये हैं। वसुहोम ने कारागृह अधीक्षक के शासकीय निवास में पत्नी को भी बुला लिया है। उससे अधिक विश्वसनीय सहयोगी कौन हो सकता है। वही है, जिसके सामने कभी-कभी अपनी विडम्बनापूर्ण स्थिति को लेकर बहुत कुछ कह डालता है। इस तरह मन की पीड़ा समाप्त भले न हो, कुछ-न-कुछ कम जरूर हो जाती है।

अनुराधा के दबे-घुटे, सहानुभूति-भरे शब्द सुनता है, तो राहत मिलती है। लगता है, जैसे किसी ने छोटे बच्चे की आंखों में आये आंसू पोंछ दिये

हैं, स्नेह से दुलार दिया है उसे। आश्वस्त किया है कि उसका चाहा आज नहीं, तो कल अवश्य पूरा हो जायेगा।

वसुहोम की चाहत है इस कठिन दायित्व से मुक्ति। एक बार कहा भी था अनुराधा से, "तुम जाकर देवक-सुता से कहना कि महामंत्री से मुझे मुक्ति दिला दें। यह परीक्षा बड़ी कठिन है अनु! कैसी विचित्र स्थिति है! मंत्रि-श्रेष्ठ ने एक कोड़ा मेरे हाथ में थमाकर अपनी ही पीठ आगे कर दी है कि प्रहार करो। ऐसी कठिन परीक्षा भला कैसे दी जा सकती है? कम-से-कम मेरे लिए तो कठिन हो रहा है, बहुत कठिन!"

उस दिन बहुत थक गया था वसुहोम। महाराज कंस ने उन्हें मिली सूचना की पुष्टि करवायी थी। पुछवाया था, क्या यह समाचार सत्य है कि देवकी गर्भवती हुई है?

समाचार सत्य था। गुप्तचर द्वारा पहुंचायी गयी सूचना से बहुत पहले राजा तक इस समाचार की सूचना भिजवाना कारागृह-अधीक्षक का ही दायित्व था, पर जाने क्यों वसुहोम इस सूचना को लेकर पहुंचाये-न-पहुंचाये की ऊहापोह में ही पड़ा रह गया और उधर सूचना कंस तक जा पहुंची। अब उसकी पुष्टि का आदेश आया था।



अनुराधा ने व्यथित मन पति को सहानुभूति से देखा। एक पल चुप रही, फिर बोली—"धीरज से काम लें आर्य! यह परीक्षा महामंत्री नहीं ले रहे हैं, यह परीक्षा ले रही है मातृभूमि।"

"उसके लिए प्राणदान सहज है देवी! किन्तु इस तरह ओट लिये हुए अपनों पर ही घातक प्रहार करते रहना कठिन है।" वसुहोम और भावुक हो उठा था—"भला सोचो तो, महाराज कंस का विश्वस्त बनाने के लिए मंत्रिश्रेष्ठ वसुदेव ने एक चाल चली और उस चाल ने मुझे इस धर्मसंकट में ला डाला। कोई और कार्य दिया होता, तो निबाहना सहज था, किन्तु अब अपने ही स्वामी को क्रूर यातना दिये जाना सह नहीं पा रहा हूं।"

"हो सकता है आर्य! इसी में मथुरा का कुछ शुभ हो।" अनुराधा ने सम्मति दी थी—"अपितु मेरा विचार तो यह है कि इस प्रकार आपको अपनी ओर से एक अवसर मिला है। वसुदेव-देवकी के पास रहकर आप उनकी सेवा-सुरक्षा कर सकते हैं। मथुरा के शुभाशुभ में सहायक हो सकते हैं। अपने-आप पर तनिक काबू रखिए। क्या आप जानते नहीं कि कंस

की अपनी ही बहिन कंस के दमन का क्रूर कष्ट सह रही हैं ?"

"किन्तु अनु···!"

"शान्त हो जाइए !" अनुराधा ने कहा था—"मथुराधिपति को समाचार दीजिए कि उनकी भगिनी सचमुच ही गर्भवती हैं ।"

"जानती हो ना कि इस समाचार को पाते ही कंस क्या करेंगे ?" कुछ और पीड़ित होकर वसुहोम ने प्रश्न किया ।

"जानती हूं ।" अनुराधा की आखें ठहर गयी थी । सामने सूनी दीवार थी । होठ इस तरह बजे थे जैसे किसी सूखे पत्ते से खड़खड़ाहट की ध्वनि हुई हो । वह बोली थी—"मथुराधिपति अपनी ही बहिन के रक्तांश की समाप्ति का निर्णय लेंगे और यह सब नया नही है । देवकी कारागृह में लायी ही इसलिए गयी हैं, ताकि एक के बाद एक उनकी सन्तति नष्ट की जा सके । मैं ही नही, मथुरा और सम्पूर्ण गणराज्य जानता है यह !"

"फिर भी तुम कह रही हो कि मैं मथुराधिपति तक समाचार पहुंचाऊं ?" आश्चर्य और पीड़ा के साथ वसुहोम ने पूछा । आवाज कुछ नम हो आई थी । ऐसे, जैसे बरसात में भीग गई हो । गीले कपड़े-सी ढीली । कहा, "अपनों के ही वंशनाश का उपक्रम करूं ? कारण बनूं ?"

अनुराधा पूर्ववत् कठोर बनी रही । बोली, 'हां, यह सब करना आपका कर्तव्य है आर्य ! इसी के लिए महाराज कंस ने आपको यहां नियुक्त किया है और इसी क्रम को तोड़ने के लिए महामंत्री ने आपको मथुराधिपति के विश्वसनीयों तक पहुंचाया है ।"

वसुहोम तुरन्त कुछ समझ नही सका । अबूझ भाव से पत्नी की ओर देखता रहा । अनुराधा ने कहा था—"अब स्वयं को संयत कीजिए और मथुराधिपति को सूचना पहुंचाइए । बाद में विचार कीजिएगा कि क्या करना उचित होगा, किस तरह देवकी-वसुदेव की इस पीड़ा-कथा का कोई अध्याय पीड़ामुक्त किया जा सकेगा ?"

वसुहोम चुपचाप सुनता रहा । अनुराधा उठ खड़ी हुई थी—"मैं देवक-सुता की सेवा में पहुंचती हूं । आप महाराज कंस तक समाचार ले जाइए । शीघ्र ही देवकी माता बनेंगी ।"

अनुराधा ने उत्तर की राह नहीं देखी थी । वसुहोम को उसी तरह दुविधाग्रस्त छोड़कर चली गई ।

□

वसुहोम बहुत देर तक अपने-आप को सहजने में लगे रहे, फिर राज-निवास की ओर चल पड़े। मन व्यग्र था; किन्तु अनुराधा के शब्दों ने बहुत शक्ति दी थी। बहुत बार ऐसा ही होता था। वसुहोम आये दिन के चक्र से थक जाते और अनुराधा की वाणी उनमें पुनः शक्ति उड़ेल देती। पुनः कर्म-प्रवृत्त होते।

महाराज कंस विशेष भेंट-कक्ष में थे। प्रहरी से समाचार भिजवा दिया था वसुहोम ने—"कहो कि कारागृह-अधीक्षक तुरन्त भेंट करना चाहते हैं!"

प्रहरी भीतर गया और दो पल बाद लौटकर आज्ञा दी थी—"महा-राज गिरिव्रज से पधारे दूत से चर्चा में व्यस्त हैं। कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए। कहा है कि उनके निजी कक्ष में रुकें।"

एक गहरा सांस लेकर वसुहोम निजी कक्ष की ओर चल पड़े। रह-रह-कर कानों में प्रहरी के शब्द गूंज रहे थे—गिरिव्रज से आए दूत से चर्चा में व्यस्त हैं।

मन हुआ था कि जोर से कहें—"धिक्कार है महावीर! मथुराधिपति और जरासन्ध के बीच समझौता? छिः! गणसंघ की सम्पूर्ण शक्ति, क्षमता, पौरुष और स्वातन्त्र्य विक्रय कर डाला तुमने। किन्तु यह सब सोचा, कहना असम्भव था। कहा जाना मूर्खता भी होती। कालचक्र के गति-क्रम में चुप-चाप सब कुछ देखते-सहते जाना ही उनका धर्म! निजी कक्ष में पहुंचकर प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ देर बाद ही मथुराधिपति का सन्देश आ पहुंचा था—"महाराज आ पहुंचे हैं।" वसुहोम तुरन्त उठ खड़े हुए।

मथुराधिपति कंस विशाल प्रकोष्ठ में एक भव्य आसन पर बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर पहली दृष्टि पड़ते ही वसुहोम समझ गए थे कि किसी शुभ समाचार ने प्रसन्न कर रखा है। विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया, कहा—"आपकी सूचना सही है महाराज! वसुदेव की भार्या गर्भवती हुई हैं।"

कंस ने तुरन्त कुछ नहीं कहा। न ही चेहरे पर कोई भाव व्यक्त किया। निरन्तर वसुहोम को देखते रहे। इस दृष्टि से अनायास ही सही वसुहोम कुछ सहम गये। वही क्यों, कोई भी हो, सहम जाता। मथुराधिपति की वह दृष्टि लगता था कि एक कुरेदन-सी है। भीतर से सब कुछ कहलवाने को उत्तेजित करती हुई-सी; पर वसुहोम ने तुरन्त स्वयं को संयत किया। इस

दृष्टि के सामने सकुचकर अपने प्रति संदिग्ध कर लेगा कंस को। उचित यही है कि नजरें झुकाये नहीं। पलकें ठहरा दी। थोड़ी देर बाद कंस बोले थे—"आश्चर्य है वसुहोम! यह सूचना तुमसे पूर्व हमें प्राप्त हुई? हम तो आशा करते थे कि तुम ही पहले व्यक्ति होगे, जो यह समाचार दोगे?" दृष्टि उस समय भी कुरेद रही थी। पलकें तब भी ठहरी हुई।

वसुहोम समझ चुके थे, यह जवाबतलबी हो सकती है। बहुत सीमा तक सही भी थी बात। निश्चय ही यह समाचार कोई अन्य व्यक्ति कंस तक पहुंचाये, इसके पूर्व वसुहोम को कंस तक पहुंचाना चाहिए था। वसुहोम को अनायास ही वह दिन याद हो आया, जब कंस ने कारागृह-अधीक्षक के पद पर उसे नियुक्त किया था। कहा था—"तुम पर एक बहुत बड़ा दायित्व सौंप रहा हूं वसुहोम! निश्चय ही तुम इस दायित्व को पाकर प्रसन्न होगे।"

वसुहोम सहमा हुआ खड़ा था। मथुराधिपति क्या कहेंगे, निश्चय नहीं; पर इतना निश्चित है कि जो कुछ कहेंगे, वह नीति चक्र का कोई धागे जैसा ही होगा। ऐसा धागा जिसे वसुहोम केवल मकड़ी की तरह बुनने का काम करेगा। जाल बनेगा किसी और के लिए। किसी और अर्थ में।

कंस ने कहा था, "मुझे बहुत समय से खेद था वसुहोम! तुम जैसे कर्मठ व्यक्ति की सेवाओं को वसुदेव ने बहुत धिक्कृत किया। तुम्हें अवसाद दिया। अतः बहुत सोच-विचारकर मैंने तुम्हारे लिए यह महन् दायित्व खोजा है।"

क्या? वसुहोम ने पूछा नहीं, पर जिस तरह महाराज को देखा, दृष्टि में ये शब्द अंकित थे।

कंस बोले थे—"कल से तुम कारागृह-अधीक्षक का कार्यभार सम्हालोगे।"

सुनकर वसुहोम को धक्का लगा; पर शान्त रहे। तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। एक पल के लिए मन प्रसन्न भी हुआ था। इस तरह वसुदेव के करीब रह पाने का अवसर मिलेगा। उनकी सेवा और सार-सम्हाल भी कर सकेंगे वसुहोम।

कंस ने कहा था—"हमारी दृष्टि में तुमसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति इस पद के लिए नहीं हो सकता।"

"जैसी महाराज की आज्ञा!" वसुहोम ने सिर झुका दिया था।

कंस कहे गये थे—"तुम वे सभी सूचनाएं जो वसुदेव-देवकी और दू-

महाराज उग्रसेन-सम्बन्धी होंगी, हम तक तुरन्त पहुंचा सकोगे। इसका हमें पूर्ण विश्वास है।"

"मैं प्रयत्न करूंगा देव, कि आपका यह विश्वास निबाह सकूं।" वसुहोम ने अतिविनम्र स्वर में उत्तर दिया था।



आज उसी विश्वास पर बात आ ठहरी थी। कंस पूछ भी रहे थे। पूछ क्या रहे थे, एक तरह से यह जानना चाहते थे कि उस विश्वास के निर्वाह में कोताही क्यों हुई ?

वसुहोम ने पल-भर में निर्णय लिया कि क्या कहना उचित होगा ? कौन-से शब्द हो सकते हैं, जो दुर्मति और संशयप्रिय कंस को समाधान दें। कहा था, "महाराज की जिज्ञासा सहज है, किन्तु कोई समाचार जब तक पुष्टि न पा ले, उसे महाराज तक पहुंचाना गुप्तचर या अधिकारी का धर्म नहीं है। मैंने यही उचित समझा अब, जब कि पुष्टि करवा चुका हूं, तब इस समाचार की सत्यता के साथ आपके सामने उपस्थित होना उचित समझा है।"

कंस देखते रहे उसे। सहसा वसुहोम को लगा था कि उसके चतुरता-पूर्ण उत्तर ने उन्हें आश्वस्त किया है। आसन से उठ पड़े। प्रसन्न स्वर में उत्तर दिया—"हम तुम्हारे नीतिपूर्ण उत्तर से सन्तुष्ट हैं अधीक्षक ! निश्चय ही किसी समाचार की सम्पूर्ण सत्यता प्राप्त किए बिना उसे जहां-तहां पहुंचाना या फैलाना अनुचित है। तुमने अच्छा ही किया।"

वसुहोम सिर झुकाए खड़े रहे। ऐसे, जैसे किसी अगले आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हों। सहसा कंस मुड़े। कहा—"तुम पहुंचो वसुहोम ! हम आयेंगे।"

वसुहोम ने शीश झुकाया। चल पड़ा।



लगा था कि अनुराधा ने बिलकुल कगार पर लाकर बचा लिया है। सारी राह सोचते आये थे वसुहोम। क्या करेंगे? किस तरह करेंगे ! महाराज कंस निश्चय ही आयेंगे। आकर देवकी-वसुदेव से क्या कहेंगे या उनकी होनेवाली सन्तति को लेकर क्या निश्चय करेंगे, कह पाना कठिन था। एक मन कहता था, कंस कितने ही दुष्ट और राजलोभ में लिप्त क्यों न हो, अपनी ही बहिन के रक्तबीज का नाश नहीं करेंगे।

पर बचने ही [illegible] कि [illegible] रहे हैं वह। कंस की क्रूरता और कठोरता जानी-पहचानी थी। [illegible] उनका वह विचार कि शत्रु को जड़-मूल से [illegible] देना [illegible] है। [illegible] निश्चय ही देवकी-वसुदेव की सन्तति का नाश कर देंगे।

मन खिन्न हुआ था। एक बार [illegible] भावुक हो उठे थे वह। हे, ईश्वर! महामंत्री वसुदेव ने किस कठिन परीक्षा में डाल दिया है? कारागृह आधी-[illegible] के नाते एक [illegible] बालक या बालिका का क्रूरतापूर्ण वध किस तरह देख सकेंगे वह? किस शक्ति को [illegible] उसे सह पायेंगे? [illegible] और हिंस्र दृश्य की कल्पना-भर [illegible] रही है तब उसका साकार रूप किस तरह संयत रहने देगा उसे?

किन्तु कोई राह नहीं। एक बार इच्छा हुई थी, वसुदेव के सामने पहुंचकर ही प्रार्थना करे—"मुझे दायित्व-मुक्ति दो, प्रभु! मैं [illegible] करने की अपेक्षा कारागृह में बन्दी-जीवन बिताना अधिक उपयुक्त [illegible] हूं। यह सब असह्य है मेरे लिए।"

पर क्या वसुदेव वैसी आज्ञा देंगे? लगता था कि [illegible]। [illegible] ही नहीं।

लौटकर निवास पर आया, तो अस्तव्यस्तता का भाव लिए हुए [illegible] कक्ष में आ लेटा था वसुहोम। पत्नी ने पूछना चाहा था, क्या हुआ? [illegible] होम ने कहा था—"मुझे कुछ समय के लिए शान्ति चाहिए, [illegible]।"

अनुराधा लौट गई थी। कितनी देर वसुहोम [illegible]। पलकें बन्द किए हुए भी जागता रहा, निश्चिन्त नहीं। [illegible] जब कक्ष के बाहर आया, तब तक धुंधलका [illegible]। सेवक निवास-गृह में प्रकाश-व्यवस्था करने [illegible]।

वसुहोम उसी तरह मुलझे-अनमुलझे [illegible] आ बैठा। सेविका को आदेश दिया था—"[illegible]।"

वह चली गई। वसुहोम [illegible] रहा। अन्धेरा और अन्धेरा [illegible] की तरह ही मन भी अन्धकार [illegible] वह सुलगता हुआ। [illegible]

□

कारागृह में बैठे देवकी के [illegible]

अन्धेरा था, जो किसी भी प्रकाश से कभी नहीं मिटता। हर भोर सूर्योदय के साथ सूर्योपासना करती थी—"इस अन्धकार से कब मुक्ति मिलेगी प्रकाशेश्वर!"

पर लगता था कि मन की अनन्त गुफाओं में भटककर उनके अपने सोचे हुए शब्द गूंजकर वापस लौट आते हैं। सूर्य उन्हें स्वीकारता नहीं था यह कि सूर्य की अनन्त दूरी तक देवकी के वे शब्द पहुंच ही नहीं पाते। पति की ओर देखतीं। चेहरा दाढ़ी से भर गया था उनका; पर दृष्टि में वही शान्ति थी। विश्वास की वही चमक। क्या इन्हें कंस के शब्द स्मरण नहीं? देवकी सोचती।

फिर लगता कि याद होंगे। बिलकुल उसी तरह याद होंगे, जिस तरह देवकी को याद हैं। कंस ने उस दिन प्रार्थना पर देवकी-वसुदेव का वध तो नहीं किया था; किन्तु यह स्पष्ट कह दिया था कि इसके पूर्व कि देवकी उनके काल को जन्म दे, वह काल नाश कर दिया करेंगे और काल? देवकी का मातृत्व, उनकी सन्तति।

देवकी थूक के घूंट निगलती। विश्वास नहीं होता था कि कंस वैसा करेंगे; पर कंस वैसा नहीं कर सकते, यह भी तो विश्वसनीय नहीं लगता था। अपने ही पिता को वृद्धावस्था और जर्जर आयु के बावजूद कारागृह का कठोर वनवास देनेवाले कंस के लिए किसी अबोध को मृत्युदान देना भी तो उतना ही सहज है। तब विश्वास क्यों न करती देवकी। उन्हें पूरा विश्वास हो गया था। निश्चय ही कंस उनकी सन्तति का जन्म के साथ ही वध कर दिया करेंगे।

वध'''। अनुभव होता कि शब्द वज्र की तरह घोर नाद करता हुआ कारागृह की दीवारों को भेदता देवकी के मर्म पर आ गिरा है। भयावह पीड़ा देता हुआ। देवकी तड़प उठी हैं। चीखी हैं, पर चीखें भी घुटकर रह गई हैं उनके अपने भीतर। उनके अपने-आप को ही कुचलती हुई।

बरबस ही आंसू तिर आते आंखों में। अनचाहे ही गला भर्रा जाता। बोल पड़ती—"स्वामी!"

वसुदेव पास आ खड़े होते—"बोलो, देवी!"

और देवकी चेहरा ऊपर उठाती। कुम्हलाया, भयग्रस्त चेहरा! शब्द-हीन देखती रह जातीं पति की ओर। यह दृष्टि ही जैसे सब कुछ कहती पड़ती।

वसुदेव एक गहरा श्वास लेकर हौले से उनके करीब बैठ जाते। नेह से इस तरह दुलारने लगते, जैसे पीड़ा-भरे समूचे शरीर को सांत्वना दे रहे हों। इस सांत्वना के शब्द नहीं होते थे। केवल अभिव्यक्ति होती—"शांत हो देवी ! शान्त हो !!"

और अनायास ही सही, पर वह सिसक उठती। किसी छोटी बच्ची की तरह। वसुदेव की तरह। वसुदेव के विशाल वक्ष से धीमे से चिपक जाती। यही सिसकियां, यही शब्द, यही रुदन, सारी व्यथा-कथा !

वसुदेव के अपने भीतर भी कुछ गल उठता। वह सब, जिसे स्वामि-भक्ति, देशभक्ति, गणसंघ के प्रति निष्ठा और नागरिकीय अधिकार की सम्मिलित शक्ति से चट्टान की तरह ठोस बना रखा था। मन में एक भय उग आता। इस तरह कहीं मार्ग-विचलित न हो जायें वह ? नहीं-नहीं, भावुक नहीं होना चाहिए उन्हें। उनकी एक सन्तति, देवकी के एक गर्भ में यादव गणसंघ के अनेक गर्भों का भविष्य छिपा है ! उनके स्वतंत्र-आकाश की स्वच्छन्द हवा समायी हुई है। इस सबके लिए उन्हें स्वयं को होम करना होगा, देवकी की भावनाओं-कामनाओं और मातृत्व को होम करना होगा। वे हाथ हटा लेते पत्नी की पीठ से फिर उठ भी पड़ते।

देवकी दबी-घुटी सिसकियां सहेजती हुई दोनों घुटनों में सिर झुकाये बैठी रहती। कितनी रातें, कितने दिन, कितने प्रहर और कितने घंटे इसी तरह नहीं बीत गए थे ? हर बीतते पल के साथ सिसकियों की गति तीव्र होती जा रही थी। हर बीतते पल के साथ गर्भ का समय बढ़ता जा रहा था और हर बीतता क्षण कंस के कोप की अग्नि तीव्र और तीव्रतर करता जा रहा था।

यह कोपाग्नि एक दिन देवकी का गर्भ झुलसाने अवश्य आयेगी। निश्चित···! कंस काल-जय की मूर्खतापूर्ण चेष्टा में जो लग गये हैं। हर आहट चौंका देती। हर हवा सिहरा डालती।

अकचकाकर देवकी और वसुदेव दोनों ही यहां-वहां देखने लगते। अन्धकार में प्रकाश की हलकी-सी किरणें आती थीं। वह भी खिड़कियों की राह। इन राहों के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता था दोनों को। सब ओर जो दीखता था, वह था, केवल कंस का भय ! उसकी अगवायी का अप-शकुन।

वसुदेव पत्नी से कुछ परे हटकर बैठ गए। कभी-कभी लगता था :

निराशा उनके भीतर भी गहरी होने लगी है। भला सब कुछ हारकर किस आशा और विश्वास के सहारे बाजी बिछाये बैठे हुए हैं वह।

महाराज उग्रसेन बन्दी हो चुके हैं। स्वयं वसुदेव-देवकी कारागृह में हैं। राजा देवक भी पुत्री और दामाद के शुभार्थ कुछ नहीं कर सके हैं। तब कौन-सा आशाबिन्दु है, जिसके सहारे वे जीवित हैं? या कि जीवित रहने की इच्छा उनमें शेष है? लगता था कि कुछ भी नहीं। सम्पूर्ण जीवन जिस नीति-चक्र का जाल तोड़ते-बुनते रहे थे, उस नीति-चक्र से अब कुछ होनेवाला नहीं है।

ऐसे निराश पल बहुत भावुक बना डालते थे उन्हें। इसी भावावेश में कह उठते थे—"देवी!"

देवकी उन्हें देखने लगतीं।

वसुदेव कहते—"अब हम जीवित ही क्यों हैं? कुछ नहीं होने वाला! कुछ होने के लिए जो थोड़ा बहुत चाहिए, वह भी तो विशेष हो गया है। तब किस आशा को संजोये जी रहे हैं हम?"

और ऐसे पलों में अनेक बार देवकी ने उन्हें ढाढ़स बंधाया था—"साहस रखें, देव! ईश्वर श्रेष्ठ ही करेगा। उसके न्याय की गति कौन समझ-जान पाया है, धीरज से काम लें।"

यही सब था, जो इस अन्धकार में अब से नहीं महीनों, सालों से घट रहा था, फिर निरन्तर हो गया। किसी बार देवकी टूटती, तो वसुदेव की हथेली पीठ पर पाती, किसी बार वसुदेव निराश होते, तो पत्नी का हाथ कन्धे पर पाते।

कभी-कभी इस विडम्बनापूर्ण स्थिति पर रोने का भी मन होता था। हंसने का भी। एक थकान, दूसरी थकान को सहारा दे, तो कैसा लगता है। ऐसे, जैसे किसी धीमी रुलायी को तेज रुलायी के नीचे दबाया-छिपाया जा रहा हो; पर इस तरह न तो धीमा रुदन अस्तित्व खोता है, न ऊंचा रुदन।

दोनों ही एक-दूसरे को स्वीकारे, सहेजे हुए सिर्फ रुदन होते हैं। वसु-देव-देवकी भी यही हैं। एक अपाहिज, दूसरे अपाहिज का सहारा बना हुआ। एक थकान दूसरी थकान को मुसकराने का छल देती हुई। एक विश्वास, दूसरे अविश्वास को विश्वास दिलाता हुआ।

इस सब पर हंसा न जायेगा, तो क्या किया जाएगा? वह भी विक्षिप्त

हंसी में। अनेक बार इस विक्षिप्त हंसी से भी मन बहलाया था उन्होंने, फिर हंसते-हंसते रो पड़े थे। लगा था कि जिस हंसी को हंसे थे, वह भी रोने का प्रकार था।

पर इधर यह क्रम कुछ अधिक ही बढ़ गया था। देवकी के गर्भधारण ने एक तीसरे के व्यक्त होने का सुख दिया, तो बहुत बड़े दुख का कारण भी बन गया। रुग्ण पीड़ा और असह्य हो उठी।

इस पीड़ा को बांटने के कुछ प्रहरों तक अनुराधा आ जाया करती थी और लगता था कि कुछ है, जिसके सहारे जिया जा सकता है; पर जैसे ही वह विदा लेती, आशा की किरण सहसा लोप हो जाया करती।

फिर वही एकांत, अन्धकार, सन्नाटा और इस सन्नाटे को किसी बार झकझोरती, किसी बार टोकती और किसी बार चौंकाती हुई कोई पदचाप!

पदचापों की भी पहचान होने लगी थी उन्हें। सन्तरी कहां-से-कहां तक पहरा देते हैं, कितने कदम चलते हैं, कितनी आहट होती है, किस सीमा तक ध्वनि आती है! सब कुछ जान-पहचान लिया था उन्होंने, फिर इससे भी ऊब होने लगी! चौंकना बन्द हो गया।

अब चौंकाती थी कोई नई पदचाप। पर नई पदचाप यदाकदा उस ओर आ जाया करती। कभी-कभी उपाधीक्षक कंटक के रूप में कभी अधीक्षक वसुहोम के रूप में।

दोनों की ही आहटें चौंकातीं। मन को भय से भी भर दिया करतीं; किन्तु चेहरे सामने आते तब निश्चिन्तता जनमती। कंटक को पाकर संशक हो उठते थे, वसुहोम को पाकर निश्चिन्त।

कंटक, मथुराधिपति कंस का विश्वसनीय सेवक था। वही समाचार ले गया था कंस तक। देवकी गर्भवती हुई हैं।

फिर कंस ने अधीक्षक से सूचना मांगी थी—"क्या यह समाचार सत्य है?"

☐

नितान्त सत्य है। वसुहोम को सूचना देनी पड़ी थी और सूचना पहुंचाने के बाद स्वयं ही स्वयं से खिन्न हो गए थे। धीमे-धीमे ही सही, किन्तु यह सब करके वह वसुदेव के प्रति द्रोह ही कर रहे हैं।

किन्तु अनुराधा ने कहा था—"यही उचित था। इसके अतिरिक्त कर भी क्या सकते थे तुम?"

"किन्तु अनु !" वसुहोम के शब्द पूरे हों, इसके पूर्व ही पत्नी ने आश्वस्त किया था उन्हें—"इस समय यही उचित था; पर इस उचित ने बहुत कुछ समझा दिया है, यह विचार क्यों नहीं करते ?"

"वह क्या ?"

"कौन है वह व्यक्ति, जिससे महाराज कंस तक यह सूचना पहुंचती है ?" अनुराधा ने कहा था—"उस पर विचार करो और फिर उसे किसी तरह मार्ग से हटाओ । इस समय यही करना शुभ होगा।"

वसुहोम आश्चर्य से पत्नी को देखता रह गया। मन हुआ था कि सराहना करे, कह दे—"सच ही तुम शक्ति हो ! यह विचार तो मैंने किया ही नहीं था।"

अनुराधा कहकर चली गयी थी । वसुहोम पुनः विचारमग्न हो गया, पर उस एक से ही मुक्ति पा जाना काफी होगा क्या···? और भी न जाने कितने अपरिचित चेहरे हों, जो कंस के गुप्तचर और विश्वसनीय व्यक्ति हों ? कारागृह में केवल देवकी, वसुदेव और महाराज उग्रसेन ही तो नहीं हैं और भी अनेक राजबन्दी हैं, जिन्हें लेकर प्रतिपल कंस सावधान ही नहीं अतिरिक्त सावधान रहते होंगे । केवल एक गुप्तचर का पता लगा लेना-भर तो काफी होगा नहीं ।

तब···? तब एक ही राह थी । वसुदेव-देवकी को इस कारागृह से कहीं अन्यत्र ले जाया जाये । कारागृह की अन्य एकांत कोठरियों में । वहां अपने विश्वस्त व्यक्ति रखे जायें । ये व्यक्ति कारागार अधीक्षक के अतिरिक्त किसी अन्य को कारागार में प्रवेश न करने दें और ऐसे आदेश महाराज कंस स्वयं दें और आदेश किस तरह दिये जा सकते हैं, यह चिन्ता का विषय। उससे कहीं अधिक विचार-विषय। वसुहोम माथापच्ची करने लगा था। कोई-न-कोई राह इसी तरह, इसी भांति निकालनी होगी।

कंटक को मार्ग से हटाना सहज नहीं होगा । उसे लेकर बहुत कुछ जानता था वसुहोम । विशेषकर यह कि वह केशी द्वारा नियुक्त है। केशी का सम्बन्धी । उसके रहते, कंस और केशी के गुप्तचरों से मुक्ति पा लेना असम्भव होगा ।

और कंटक के रहते कंस के गुप्तचरों पर हाथ डाल पाना भी असंभव ! अतः सबसे पहले कंटक को ही हटाना होगा; पर कैसे ?

इस 'कैसे' का उत्तर सहज नहीं है । वसुहोम भी जानता है, देवकी और

वसुदेव भी। फिर कंटक है वसुहोम के तुरन्त बाद कारावास का दूसरा बड़ा अधिकारी। शक्ति, सत्ता, अधिकार सभी कुछ हैं उसके पास। वसुहोम और ज्यादा उलझ गया।



कई दिनों बाद उलझन की राह निकली थी; पर तब, जब बहुत कुछ घट गया।

रात्रि प्रारम्भ होते-होते सूचना आ गई थी—"महाराज कंस पधार रहे हैं।" वसुहोम उस समय नियमतः रात्रि कालीन प्रहरियों का अवलोकन करके लौट रहा था साथ था कंटक। मोटी-मोटी मूंछें, रक्ताभ दृष्टि। देखने से ही पशु लगता था, हिंस्र पशु। कभी केशी की विलासिताओं का साथी हुआ करता था वह। सहसा कंस के सत्ताधीश होते ही इस उच्चपद पर आ पहुंचा।

वे सभी तुरन्त महाराज की अगवाई के लिए कारावास के मुख्य द्वार पर जा पहुंचे थे। भव्य रथ पर सवार मथुराधिपति जैसे ही आये, वसुहोम और कंटक ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। राजा ने रथ पर सवार रहकर ही प्रश्न किया था—"किधर है हमारी प्रिय भगिनी ?"

"आइए राजन्" वसुहोम आगे हो लिया। मार्ग की ओर बढ़ते हुए लगा था कि पांव कांप रहे हैं। जैसे-तैसे उन्हें सहेजा; पर लगता था कि लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा। टखने भी साथ नहीं दे रहे थे। धड़ झूलता हुआ-सा।

महाराज रथ से उतरे। आगे बढ़े। कारागृह के विशाल गुफा जैसे आकार में प्रवेश कर गये। सैनिक जहां-तहां मुस्तैदी से खड़े हुए थे। मथुराधिपति गौरवपूर्ण चाल से चलते हुए देवकी और वसुदेव के बन्दी-कक्ष तक पहुंचे।

वसुहोम ने आगे बढ़कर कठोर लौहद्वार खोल दिया। कंस भीतर समा गए। सहमे हुए वसुदेव और देवकी ने उन्हें देखा। कंस की दृष्टि बहिन के पेट पर लगी हुई थी, जैसे टटोल रहे हों। समय-काल का अनुमान कर रहे हों। आंखें इस तरह सुर्ख थीं, जैसे दो चिनगारियां चेहरे पर जड़ दी गई हों।

देवकी की आंखों में दया-याचना का भाव! वसुहोम ने देखा, फिर अनचाहे ही दृष्टि झुका ली। अच्छा नहीं लगा। राजसुता इस तरह याचिका

बनकर अपने ही भाई को देखे ? छि: ! मन गलने लगा।

कंस बोले थे—"समाचार मिला और तुम्हें देखने चला आया बहिन। यहां किसी तरह का कोई कष्ट तो नहीं है ?"

प्रश्न शालीनता की ऐसी दुधारी तलवार जैसा था, जिसने वसुदेव और देवकी का ही मन घायल नहीं किया, वसुहोम की आत्मा भी कचोट डाली। जी हुआ था, धिक्कारे कंस को—"इस तरह अपनी ही बहिन को प्रताड़ित करके कौन-सा क्रूर आनन्द ले रहे हो तुम ? पशु ! नितान्त पशु !"

पशुओं में भी ममता होती है; किन्तु कंस ? बहुत सोचा, पल-भर में बहुत-से शब्द माथे से निकालकर मन तक गुआ लिए; किन्तु होंठों ने साथ नहीं दिया। चुप रहे।

वे चुप खड़े थे। वसुहोम को अचरज हुआ। अनुराधा से सुनता रहता था वह। देवकी आगत-भय से निरन्तर सुलगती-जलती रहती हैं। अनेक बार लावे की तरह बही भी हैं; पर इस समय वह शान्त थीं। ऐसे जैसे बर्फ की शिला हो गई हो।

ऐसा क्यों ? वसुहोम ने सोचा। उत्तर दिया था देवकी की दृष्टि ने। अनायास ही दया से घृणा का भाव जनम आया था उनकी आंखों में। होंठ भिंचे हुए।

"मैं अपने काल की प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रता से कर रहा हूं, महामन्त्री !" कंस ने जैसे मृत्यु का उपहास करते हुए कहा था। कैसा उद्दंडतापूर्ण अहम् था उसका ! कैसा मूर्खतापूर्ण विचार ! "ज्ञात हुआ है कि तुम्हारी आठवीं सन्तति मेरे नाश का कारण बनेगी !" सहसा कंस हंस पड़ा था—"आठवीं सन्तति ! मैं इन बातों पर विश्वास नहीं करता। यह मूर्खता है। सम्भवतः मेरा और दूसरों का भी मतिभ्रम है !"

सब चौंके। यह सब क्यों कह रहा है कंस ? क्या देवकी और वसुदेव की ओर से निश्चिन्त हो गये हैं ? कालभय से मुक्ति पा ली है उन्होंने ? किस शुभ ग्रह के प्रभाव से मन विग्रह मुक्त हो गया है ?

कंस के संवाद ने देवकी और वसुदेव की आंखों से घृणा सहसा गुमा दी। उसकी जगह उभर आया एक अबोध भाव। एक उत्कट जिज्ञासा। जैसे समझने का प्रयत्न कर रहे हों कि कंस के कहने का अर्थ क्या है ?

कंस बोले थे—"मैं तुम्हें स्नेह करता हूं बहिन… ! और मैं यह मानने के लिए कदापि तैयार नहीं कि केवल तुम्हारी आठवीं सन्तति ही मेरे नाश

का कारण बन सकती है।"

बात अब भी अस्पष्ट थी। सब संवादहीन, प्रश्नहीन, जैसे दृष्टि से कुरेदकर पूछ रहे थे उनसे—"महाराज ! क्या कहना चाहते हैं आप ?"

☐

कंस ने स्पष्ट की थी बात। बोले—"मैं तुम सबकी मनोदशा जान रहा हूं। यह भी जान रहा हूं कि तुम सभी क्या विचार रहे हो ? पर मैं स्पष्ट किये देता हूं। मृत्यु से भय मुक्त होते हुए भी मैं उन मूर्खों में से नहीं हूं, जो मृत्यु को पहचानकर भी उसके आगमन की प्रतीक्षा करते हैं।"

"किन्तु राजन् !" वसुदेव बोल पड़े थे—"मृत्यु से मुक्त कोई नहीं हुआ। अमरत्व केवल आत्मा से होता है, शरीर से नहीं। जीव मात्र की मृत्यु निश्चित है, केवल उसके कर्म नहीं मरते। कभी वह शुभ कर्मों के कारण अमरता पाता है, कभी अपने अशुभ कर्मों के कारण।"

"निस्सन्देह महामन्त्री ! निस्सन्देह !" कंस बोले—"मैं आपकी बौद्धिक क्षमताओं और ज्ञान का सदा ही आदर करता आया हूं। यों भी मेरे परिजन हैं आप। मेरे पूज्य; पर व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसकी स्थितियां और इन्हीं स्थितियों ने मुझे बाध्य किया है कि मैं आपके प्रति कठोर रहूं।" सहसा वह चुप हो रहे थे। वसुदेव पर दृष्टि गड़ी हुई थी उनकी। जैसे कह रहे हों, अब भी नहीं समझे ? वसुदेव चुप हो गये।

थोड़ी देर बाद कंस ने ही पुनः बात प्रारम्भ की थी—"जो स्थितियां हैं, उनमें मैं बाध्य हूं कि तुम्हारे विद्रोही रक्त से जनमने वाले प्रत्येक जीवांश में अपना नाश देखूं, अतः मैंने निर्णय किया है कि भले ही मेरे काल-रूप में तुम्हारी आठवीं सन्तान का उल्लेख किया गया हो, किन्तु मैं तुम्हारी किसी भी सन्तति को जीने नहीं दूंगा। इस हेतु मुझे क्षमा कर देना।"

ओह ! वसुहोम ने सुना। लगा था कि धूर्त कंस ने समूचे कारागार को इन शब्दों के साथ ही लपटों से झुलसा दिया है। इस सीमा तक क्रूर और निर्दय हो सकता है कोई ? मन ने विश्वास नहीं करना चाहा था, पर साक्षात् विश्वास सामने था, कंस !

वसुदेव स्तब्ध रह गये थे। दृष्टि में अविश्वास था, उससे कहीं अधिक आश्चर्य। जैसे कंस को पहली बार देख रहे हों या समझने की चेष्टा कर रहे हों, मनुष्य ही है न वह ? और अगर है, तब यह विचार क्यों ? विचार मनुष्येतर था, पशुवत्; पर आया था मनुष्य-मुख से।

देवकी सिसक रही थी। उनकी सिसकियां जैसे सुनकर भी कोई सुन नही सका था। स्वयं वसुहोम भी तो सिटपिटाया हुआ-सा देखता रहा था सब-कुछ।

कंस मुड़ा था। मुड़ते-मुड़ते उन्होने धूर्तभाव से वसुदेव-देवकी को देखा था, फिर कहा—"प्रथम गर्भधारण पर तुम्हें बधाई देता हूं बहिन। पर मैं बाध्य हूं कि जो कुछ निश्चय कर चुका हूं, वही करूं ! नीति यही है।"

इसके पहले कोई कुछ कह सके या कि देवकी ही कंस से अपनी आगामी सन्तति के शुभार्थ निवेदन कर सकें, वह कारागार के बाहर निकल गये थे।

कंटक ने तत्परता के साथ वज्रवत् लौहद्वार बन्द कर दिया। विशाल-देह मथुराधिपति तीव्र गति से एक के बाद एक कदम बढ़ाते हुए बाहर निकल आये। पीछे-पीछे आज्ञाकारी भाव से चलते हुए कंटक और वसुहोम।

कंस बोले थे—"अधीक्षक ! देवी देवकी के स्वास्थ्य की पूरी देख-रेख की जाये। वे कारागृह में भले ही हों; किन्तु यह स्मरण रहे कि हमारी भगिनी हैं। हमारा काल वह नहीं हैं, वह केवल कालवाहिका बनी हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है।"

वसुहोम ने सिर झुकाया। लगभग गिड़गिड़ाते हुए कहा—"जैसी आपकी इच्छा महाराज !"

कंस उसी तरह तेज चाल में चलते हुए रथारूढ़ हो गये और फिर रथ ने मुड़ाव लिया।

कंटक और वसुहोम खड़े-खड़े उस समय तक मुख्य द्वार की ओर देखते रहे थे, जब तक कि महाराज कंस का रथ बाहर नहीं निकल गया।



वसुहोम ने निवास पर लौटकर शान्ति का श्वास लिया था। लगता था कि कंस को नही, काल की एक पूरी यात्रा को अपनी आंखों से देखकर आये हैं। मन उस समय भी सहज नही हो सका था। शरीर न चाहते हुए भी तनाव से भरा हुआ।

कंस के शब्द इस समय भी कानों में गूंज रहे थे। राजनीति के धूर्तता-पूर्ण अमृत से लिपटे विषैले शब्द ! कैसी विचित्र बात है ! मनुष्यता और पशुता एक साथ, एक ही गति में चलाई जा रही हैं। विश्वास नहीं होता;

किन्तु अविश्वास भी कैसे करें? कंस को जो देखा है उन्होंने? घोर हिंसा अहिंसा की शालीन पोशाक पहने हुए राजयात्रा कर रही है और इस यात्रा में सहायक हो रहे हैं वसुहोम।

पुनः मन हुआ था कि महामन्त्री वसुदेव के सामने जा पहुंचें। रोते, गिड़गिड़ाते हुए निवेदन करें—"नहीं, स्वामी! अब यह सेवक-धर्म नहीं निबाहा जाता। मुझे मुक्ति दें! लगता है कि जीवित रहते, मृत्यु झेल रहा हूं। यह मृत्यु से अधिक वेदनादायक स्थिति है देव!"

पर वही बात! हर बार की तरह केवल सोच ही सके थे वसुहोम। कर नहीं सके। संभवतः कभी कर भी नहीं पायेंगे। ज्ञात है कि शान्त भाव से वसुदेव एक ही उत्तर देंगे—"नहीं, वसुहोम! तुम्हें कुछ समय तक यही कुछ, इसी तरह करते रहना होगा। उस समय तक, जब तक कि अनुकूल समय नहीं आ जाता।"

और न जाने कब आयेगा अनुकूल समय? वह समय, जब कंस से मथुरा मुक्त हो चुकी होगी! वह समय जब क्रूर-मदांध शासक से स्वतन्त्र होकर शूरसेन जनपद के नागरिक सहज स्वाभाविक और स्वतन्त्र जीवन निबाह सकेंगे?

"स्वामी!"

चौंककर मुड़ा वसुहोम। देखा, अनुराधा सामने थी। शान्त, सहज, सदा की तरह उत्तेजनाहीन। मुसकराते हुए पूछा था उन्होंने—"विश्राम नहीं करेंगे?"

"हां।" वसुहोम को जैसे नींद याद हो आयी। मुड़कर शय्या की ओर चला। पीछे-पीछे पत्नी।

लेटने के बाद भी पलकें नहीं लगीं। उसे आश्चर्य हुआ कि कंस का आगमन जानकर भी अनुराधा ने उससे कुछ पूछा नहीं था। वसुहोम ने ही प्रश्न कर दिया था—"जानना नहीं चाहोगी, महाराज ने क्या कुछ कहा?"

अनुराधा ने शान्त स्वर में उत्तर दिया था, "जानती हूं कि क्या कहा होगा?"

वसुहोम चकित हुआ, "क्या कहा होगा? जानती हो तुम?"

"जानती भले न होऊं, अनुमान तो कर ही सकती हूं!"

"वह कैसे?" वसुहोम चकित हो गया।

"महाराज कंस के स्वभाव को जो लोग ठीक तरह जानते-समझते हों,

उन्हें उनके संभावित कदमों को जानने में कोई असुविधा तो नही होनी चाहिए, अधीक्षक महोदय!" अनुराधा बोली—"वह आश्वस्त होने आगे होंगे कि देवी देवकी गर्भवती हो चुकी हैं।"

"हां।"

'और उन्होंने यह भी कहा होगा कि वह प्रसन्न हैं तथा उनकी हर सन्तान में अपनी मृत्यु का दर्शन करते हैं!"

आश्चर्य से उछल पड़ा वसुहोम—"हां, बिलकुल यही कहा उन्होंने।"

"और यह भी कहा होगा कि वह देवकी की किसी भी सन्तान को अवधित नही छोड़ेंगे।"

"निस्सन्देह यही कहा।" वसुहोम ने लगभग चीखते हुए कहा था—"किन्तु तुम—तुम क्या सब कुछ सुन रही थी?"

"नही।" अनुराधा का स्वर सहसा कठोर हो गया था—"मैं जानती हूं कि मथुराधिपति जैसे क्रूर व्यक्ति के विचार क्या हो सकते हैं। इसमें आश्चर्य जैसा कुछ नही।" वह चुप हो रही।

वसुहोम बैठा रहा। पत्नी को इस तरह देखता हुआ जैसे किसी चमत्कार को देख रहा हो। अन्धकार था, रात काली, किन्तु अनुराधा प्रकाशित लगी थी उसे।

"अब विश्राम करें आप।" अनुराधा ने कहा। करवट बदल ली।

भोर हुई। बकुल को निश्चित समय से पूर्व सूचना मिल गयी थी, फिर रथ आ पहुचा। रथ के साथ सन्देश।

राह में राज-पुरोहित को साथ ले लिया था। एक बार पुनः मगधराज के सन्देशवाहक रथ ने मथुरा की राह पकड़ी। राजनीति के एक और चक्र का वाहक बना हुआ था बकुल। अन्तर केवल यही था कि इस बार वह पूर्व उत्साह नहीं था, जिसे लेकर पहले कई बार मथुरा यात्रा की थी। इसके विपरीत थी एक उदासीनता। इस उदासीनता को केवल उदासी कहा जाये -मत मनःस्थिति, तय करना कठिन।

तय करने न करने का न तो उसे अधिकार है, न ही इच्छा। लगता था कि किसी यन्त्र के पुरजे की तरह मगध के विशाल शासन तन्त्र का एक हिस्सा बन चुका है। भावनायुक्त होते हुए भी भावनाशून्य।



यह यात्रा चलती रही थी। बकुल अपने ही भीतर कसमसाता हुआ सोचता रहा था, कब तक चलती रहेगी? यह निश्चय कर पाना भी कठिन था शायद यह निश्चय करना भी बकुल के वश में नहीं। तब क्या है जो बकुल की निश्चय-शक्ति मे है?

सभवतः कुछ नहीं। इस विचार के साथ ही उसे अपने आप पर रोना आ गया था। पास बैठे थे राज-पुरोहित। वृद्ध, तेजस्वी और बुद्धिमान। न चाहते हुए भी बकुल को लगा था कि वह उसकी मनस्थिति देख-पढ़ रहे हैं। कतराकर चेहरा घुमा लिया था उनकी ओर से। जाने क्यो लगा था कि उनसे कुछ चोरी की है उसने।

सहसा वह बोल पड़े थे—"गुप्तचर!"

"आज्ञा ब्रह्मन्?" बकुल पुनः उसी यन्त्रभाव से मुड़ा। विचित्र बात थी। उसका मन, शरीर सभी कुछ तो धीमे-धीमे यन्त्र होते जा रहे हैं या कि हो ही चुके हैं।

विद्वान ब्राह्मण ने जैसे उसकी दृष्टि में गहरे तक झांका, फिर प्रश्न किया, "देखता हूं कि कुछ अस्त-व्यस्त हो? घर पर सब कुशल तो है?"

"हां-हां, महाराज! सब ठीक है।" बकुल ने हड़बड़ाकर उत्तर दिया।

ब्राह्मण मुस्कराये, पूछा, "तब भी यह उदासी क्यों? देखता हूं कि सहज नहीं रह पा रहे हो?"

"न न, वैसी तो कोई बात नहीं, देव!" बकुल जैसे बोलने के लिए बोला, पर उसे स्वयं लगा कि जो कुछ कहना चाहता है, ठीक तरह कह नहीं सका या कि जो कहना चाहता है, वही नहीं कह पाया है।

राज-पुरोहित ने उसे गहरे तक देख-पढ़ लिया था बोले—"लगता है कि अनचाहा कर रहे हो, यह हतोत्साह तो यही प्रकट कर रहा है।"

"कभी-कभी मन खिन्न हो जाता है ब्रह्मन्!" बकुल ने कह दिया—"जाने क्यों अशान्त हो उठता हूं।"

"बिना कारण कुछ नहीं होता, बकुल! खिन्नता का भी कारण होगा और इस खिन्नता में जो अव्यक्त अरुचि देख रहा हूं, वह भी कारणवश हो

होगी ।"

एक गहरा सांस लिया बकुल ने । वृद्ध को देखा, जैसे कुछ कहने के पहले परख रहा हो कि उनके सामने अपने को प्रकट करना उचित होगा क्या ? बोला—"इच्छा होती है, राजसेवा से मुक्त होकर कृषि कार्य करूं। जाने क्यों अब उतना सहज नहीं रह पाता ।"

"असहज क्यों हो ?" प्रश्न सीधा था ।

"बकुल उत्तरहीन हो गया ।"

वृद्ध ने जैसे समझाते हुए कहा था—"सहजता नहीं पा रहे हो न राज-कर्म में ?"

बकुल ने गहरा श्वास लिया । स्वीकारा—"संभवतः यही कहना उचित होगा, देव !"

राज-पुरोहित चुप हो रहे । बकुल को लगा था कि वह भी कम असहज नहीं है । अजाने ही मन उनको लेकर जिज्ञासु हो उठा था । वृद्ध राज-पुरोहित महाराज बृहद्रथ के समय से थे। उन्हें बहुत कुछ ज्ञात होगा । मगध की राजनीति का दुष्चक्र इतना घिनौना क्यों होता जा रहा है ? क्योंकर मानवमूल्य क्रमशः विशृंखलित हो रहे हैं ? किसलिए मगधराज जरासन्ध पद-लोलुपता के क्रूरजाल में उलझ गये हैं ? राज-पुरोहित अवश्य जानते होंगे । न चाहकर भी प्रश्न कर लिया था उसने—"धृष्टता न समझें तो एक प्रश्न पूछूं ब्रह्मन् !"

राज-पुरोहित ने केवल मुड़कर देखा । बोले नहीं ।

"महाराज की नीतियां जटिलतर होती जा रही हैं । मथुरा के अंधक, वृष्णि और भोजवंशी यादवों के गणसंघ को वश में करने पर भी जैसे वह शान्त नहीं हैं ।" बकुल कहे गया था—"क्या सम्पूर्ण पृथ्वी को अधीन करके भी शान्त रह सकेंगे ?"

पुरोहित हंस पड़े; किन्तु बकुल को लगा था कि इस हंसी में बहुत पीड़ा है । बहुत स्वरहीन क्रंदन ! उत्तर दिया था उन्होंने—"मनुष्य के मोह की कोई सीमा नहीं होती गुप्तचर । फिर राजमोह, शक्तिमोह, सत्तामोह और सम्पत्तिमोह एक साथ हो जायें, तब तो कहना ही क्या ? मगधराज की निरन्तर प्राप्ति ने उन्हें निरन्तर खालीपन का अनुभव कराया है। संभवतः इसी कारण वह प्राप्त करते जाने के असीम और जटिल जाल में स्वयं उलझ गये हैं ।"

"मैं···मैं निरन्तर प्राप्ति से होने वाले खालीपन को नहीं समझा विद्वत्-श्रेष्ठ।" बकुल चकित भाव से उन्हें देखने लगा।

"यही तो रहस्य है, बकुल!" राज-पुरोहित ने उत्तर दिया—"बहुत पा जाना, और अधिक पाने की इच्छा जाग्रत् करता है और यदि निरन्तर पाते रहा जाये, तो यह इच्छा निरन्तर वेगवती होती जाती है। यह साधारण मानव स्वभाव है गुप्तचर! मानवेतर शक्तियां ही इससे परे विचार कर पाती हैं। और मगधराज साधारण मनुष्य ही तो है।"

"आप···आप महाप्रतापी महाराज जरासन्ध को साधारण मनुष्य कह रहे हैं, ब्राह्मण देवता।" बकुल ने हड़बड़ाकर प्रश्न किया।

"हां, बहुत साधारण मनुष्य कह रहा हूं।" राजपुरोहित ने कुछ अरुचि के साथ उत्तर दिया था—"इतना साधारण, जितना कि एक दरिद्र भी नहीं होता।"

बुरी तरह चौंक गया था बकुल! प्रतापी सम्राट् जरासन्ध के व्यक्तित्व में दरिद्रता से भी अधिक दरिद्रता समायी हुई है, यह अनोखा और काफी चौंकाने वाला विचार था। कुछ पल चुप रहकर पूछा था उसने—"मैं और उलझ गया हूं देव! कृपा करके सहज शब्दों में बतलाइए? महाराज जरासन्ध साधारण कैसे हैं? अद्भुत शक्ति है उनमें, असामान्य राजगुणों से सम्पन्न हैं वह, अभूतपूर्व वीरता प्राप्त की है उन्होंने और आप उन्हें साधारण कह रहे हैं?"

राजपुरोहित ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया था—"हां, बकुल! मैं उन्हें साधारण ही नहीं, अतिसाधारण कह रहा हूं। जो कुछ हो रहा है या जो कुछ वह किये जा रहे हैं, वह केवल साधारण मनुष्य ही कर सकता है।"

"किन्तु वह राजा है देव!" बकुल ने जैसे चीखकर प्रतिवाद किया।

"इसी कारण तो साधारण कह रहा हूं उन्हें। इसलिए कि साधारण लोग वह मनोवृत्ति नहीं रखते, न उनमें वह इच्छाएं होती हैं, जो महाराज जरासन्ध में हैं।" राजपुरोहित ने और गम्भीर होकर उत्तर दिया था। अनायास ही वह रथ के पार दौड़कर पीछे की ओर जाते हुए दृश्यों और समय-पलों को देखने लगे थे, बुदबुदाये—"वह केवल जन्म के समय ही असाधारण थे; किन्तु जन्म के बाद निरन्तर साधारण होते गये। इतने हुए कि अब उन्हें साधारणों की कोटि में गिन पाना भी असम्भव हो गया है।"

बकुल चुप था; किन्तु मन ही मन उबलता हुआ। राजपुरोहित की

वाणी में जितनी मोहकता थी, विचारों में उससे कहीं अधिक प्रभाव था। दृष्टि आकाश की तरह गहरी और रहस्यमय हो उठी थी। बकुल कुछ पूछे इसके पहले वह फिर से बड़बड़ाने लगे थे—"हां, बकुल ! मैं सत्य कह रहा हूं। महाराज जरासन्ध का जन्म ही केवल असाधारण ढंग से हुआ था। जीवन अति-साधारण, बल्कि साधारण से भी गया-बीता बीत रहा है।"

बकुल जैसे एक नये रास्ते पर मुड़ गया था। अनजाने, अनचाहे महाराज जरासन्ध का जन्म ! जन्म की वह साधारण कथा ! अपने ही माता-पिता से सुनी थी उसने। अविश्वसनीय, अचरज से भरी कथा !

जब-जब वह कथा स्मरण आयी है, तब-तब लगा है कि जरासन्ध निश्चय ही प्रकृति का कोई चमत्कार हैं और हर चमत्कार एक शक्ति होता है। बहुत बार इस शक्ति के उसने दर्शन भी किये हैं।

सबसे अलग, सबसे विचित्रतापूर्ण जन्म हुआ था उनका। महाशक्तिशाली राजा बृहद्रथ की इकलौती सन्तान थे वह। राजा की दुर्लभ तपस्या का फल।



रथ तीव्रगति से आगे और आगे बढ़ा जा रहा था और उसी के साथ बढ़ी जा रही थीं बकुल की स्मृतियां। इन स्मृतियों में ही मगधराज के जन्म की वह सुनी-सुनायी कथा थी, जो किसी चमत्कार की तरह लगती थी; किन्तु चमत्कार थी नहीं।

जनमा किसी ने जरासन्ध को, जीवन किसी और से मिला और उससे भी पहले *जरासन्ध के जनम की आराधना-तपस्या किसी ने और की।* राजा बृहद्रथ जितने बली थे, उतने ही न्याय-प्रिय। जन-समाज के बीच भी बहुत सम्मानित थे वह। हर समय प्रसन्न रहते, हर पल प्रसन्नता दान भी करते।

पर एक दुख था उन्हें। अपार शक्ति, समृद्धि, सम्मान और यश पाकर भी निसन्तान रह गये थे वह। दो-दो रानियां थीं; किन्तु दोनों की ही गोद खाली। राजा के बहुतेक वैद्यों से परामर्श किया, किन्तु सबकी राय थी कि प्राकृतिक रूप से न रानियों मे दोष है, न राजा में। सन्तति उत्पन्न करने में *सक्षम थे वह।*

तब भाग्य के अतिरिक्त और क्या हो सकता था, जिसके कारण राजा सब कुछ पाकर भी दारिद्र्य से भर उठे थे।

बकुल ने अपने माता-पिता से ही नहीं, कभी से कुछ इसी तरह सुनी थी महाराज दृढ़ध्वज की जीवन-कथा। वहाँ भी सब कुछ वैसा ही था। सुननेवाले सुनाते थी केवल स्थूल कथा का भेद होता, शब्द वही आते, बात वही होती, उसी तरह सुनाई जाती।

और अब चक्रकेतु ने भी वही कथा स्मरण करा दी थी। अंतर केवल इतना था कि उन्होंने [illegible] के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर टिप्पणी कर दी थी। केवल कथा है असाधारण; किन्तु हैं असाधारण मनुष्य हैं मगधराज!

बकुल नहीं कह सका कि [illegible] करे, मगधराज की असाधारण जीवन-कथा; पर हाँ, जैसे उनके व्यक्तित्व को लेकर की गई इस टिप्पणी का समझने के लिए उनके [illegible] और [illegible] को देखना आवश्यक हो गया है। अनचाहे ही यह बात कहते [illegible] था। पिछली बातों और इस बात में एक अन्तर था। कभी [illegible] की [illegible] को एक [illegible] की तरह सुना था उसने और आज जैसे वही कथा विवेक की तरह उसके [illegible] हुआ।

"राज्य का क्या हुआ मां ?" बकुल ने प्रश्न किया था। बालक-बुद्धि जिज्ञासा की असंख्य परतें थीं मन में। एक परत प्रश्न बनकर उभर आयी।

मां बोली थी—"मगधराज ने सत्ता अपने सभासदों पर ही छोड़ दी थी। जो समझें करें।"

"फिर ?"

"फिर क्या वन में पहुंचकर तपस्यारत हुए। तभी समाचार मिला कि उसी वन क्षेत्र में एक ऋषि आये हुए हैं, चण्डकौशिक। गौतम के वंशज थे वह। तपस्वी कक्षिवान् के पुत्र, बड़े सिद्ध पुरुष !' मां कहे गयी थी—"राजा बृहद्रथ और उनकी रानियों ने विचार किया कि यदि किसी तरह महात्मा चण्डकौशिक को प्रसन्न कर लिया जाये, तो हो सकता है कि वह अपनी आशीष-शक्ति से मगधराज को सन्तानसुख दे दें। बस यही विचार कर राजा और रानी उनकी सेवा करने लगे।"

महात्मा प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने महाराज बृहद्रथ से वर मांगने को कहा। राजा और रानियां हाथ बांधकर उनके सामने खड़े हो गये। भर्राये गले से अपनी पीड़ा वर्णित कर दी। महात्मा ने उन्हें अपनी तपस्या से अभिमन्त्रित एक फल प्रदान किया। कहा—"जाओ मगधराज ! यह फल अपनी रानी को खिला देना। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।"

राजा प्रसन्नमन वापस अपने राज्य में लौट आये। अब वह सन्तुष्ट थे, उससे कहीं अधिक प्रसन्न। जीवन की प्रौढ़-वेला पर ही सही; किन्तु उन्हें सन्तान प्राप्त होने वाली थी। ऋषि का आशीर्वाद निश्चय ही फलदायी होना था।



गिरिव्रज में उदास राजा की प्रसन्नमन वापसी ने विचित्र-सा आनन्द बिखरा दिया। बृहद्रथ पुत्र-प्राप्ति का वर लेकर लौटे थे। सभी ने सुना, सन्तुष्ट और आश्वस्त हुए। मगध में व्याप्त निराशा सहसा आनन्द से भर उठी।

राजा बृहद्रथ ने अभिमन्त्रित फल को भांति-भांति से पूजा-अर्चना की और फिर उसे रानियों को प्रदान कर दिया। रानियां भी प्रसन्न होकर अपने-अपने राजनिवासों में पहुंचीं। ऋषि के दिये फल को उन्होंने आधा-आधा बांट लिया। दस माह बीतते-न-बीतते दोनों रानियां गर्भवती हुईं समय पूरा होने पर उन्होंने सन्तति को जन्म दिया।

राजा बृहद्रथ व्याकुलता के साथ अपने विशेष कक्ष में बैठे शुभ समाचार की प्रतीक्षा कर रहे थे। कभी आसन ग्रहण कर लेते, कभी व्यग्र होकर टहलने लगते। पल-पल बाद समाचार पूछते—"क्या समाचार है प्रसूति-गृह का ?"

सेवक-सेविका सहज-सा उत्तर देते—"अभी जीवन-जन्म नहीं हुआ राजन् !" फिर दौड़-धूप में व्यस्त हो जाते।

उधर दोनों रानियां एक ही प्रसूतिगृह में थी और देख-रेख कर रही थी जरा। जन्मतः राक्षसी थी वह; किन्तु प्रसूति-क्रिया में निपुण मानी जाती थी। अन्य स्त्रियां भी उसे सहयोग कर रही थीं। रानियों ने जरा को पहले से ही बुलवा लिया था। राज्य की ओर से उसकी सेवा-टहल में कोई कमी नहीं रखी गयी थी।

स्वभावतः जरा अपने वंश वैशिष्ट्य के कारण तनिक-सी असुविधा में ही उग्र हो जाती थी। सब जानते थे कि गुणमयी राक्षसी की अप्रसन्नता मगध ■ कुलदीप के लिए कितनी अहितकर हो सकती है, अतः उसे हर तरह प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा की गई थी।

और यह सौभाग्य ही था कि जरा सन्तुष्ट ही नहीं प्रसन्न रही। रानियों के प्रसूति-गृह में पहुंचते ही राक्षसी ने तरह-तरह की औषधियां लेकर वहां प्रवेश किया। रानियां गर्भपीड़ा के कारण अस्त-व्यस्त होती हुई चीत्कार कर रही थीं। जरा ने उन्हें सम्हालना-सहेजना प्रारम्भ किया।

राजमहल के बाहर असंख्य नर-नारी एकत्र हो गये थे। मगध का चिर आकांक्षित स्वप्न पूरा होने जा रहा था उस दिन। निस्सन्तान बृहद्रथ पुत्र-धन से सम्पन्न होने वाले थे।

विभिन्न वाद्य यंत्र लिये वादक खड़े थे। मागध-बन्दी, चारणों की उत्सुक दृष्टियां राजनिवास की ओर उठी हुई थीं। हर हृदय धड़कता हुआ। हर मन उत्साह और उल्लास से आन्दोलित। क्या है मगध के भवितव्य में ?

आनन्द और उत्साह के पूर्व समूचे नगर को एक रहस्यमय सन्नाटे ने घेर लिया था। ऐसे जैसे तप्त धरा के ऊपर घटाओं से भरा आकाश बिखरा हुआ हो; किन्तु बरखा न हुई हो। कितनी आंखें-पलकें उठाती-गिराती अतृप्त भाव से उन घटनाओं को देख रही थीं ! कितने ओठों पर बेचैनी बिखरी हुई थी।

महाराज को संतति-प्राप्ति होगी और महल के भीतर से दास-दासियां तरह-तरह का कोलाहल प्रारम्भ कर देंगे। शुभसकेतों के हर्षोल्लास से भरे अनेक स्वर राजनिवास के बुर्जों के झरोखो से पंछियों की तरह आकाश में कुलांचें भरने लगेंगे।

और उसी के साथ जन-उल्लास आंधी की तरह समूचे गिरिव्रज के रास्तो-गलियारो पर बहने लगेगा किन्तु सन्नाटा था कि टूटने को ही नही आ रहा था। हर बीतते पल के साथ व्यग्रता, चिन्ता में बदलती जा रही थी। चिन्ता की हर कौंध अजाने ही असंख्य लोगो के मन मे भय उपजाती हुई।



और सेविकाएं भी भय से भरी थी। उनसे कही अधिक भयातुर थी जरा। कितनी बार उसने विचार नही किया था कि क्या होगा? राजा और राज्य की ओर से ही नही, रानियों की ओर से उसे जो पूजा-सत्कार मिला था, उसके प्रतिफल में वह मगधराज को सन्तानसुख दे सकेगी या नही?

रानियों के गर्भ असहज थे। साधारण गर्भ-समय से अधिक समय भी लिया था उन्होने और उससे कहीं अधिक चिन्ता की बात थी कि दोनों माताओं की पीड़ा! यह पीड़ा बढ़ती जा रही थी और जरा दौड़-भागकर सहयोगी धात्रियों के साथ उनकी सार-सम्भाल में व्यस्त थी। देर बाद रानियो ने जीव-जन्म दिया; पर यह क्या? भय, चिन्ता और उससे कही अधिक विद्रूप से भर उठा सभी का मन। माताओं ने भी अपनी दृष्टि मोड़ ली थी उस ओर से। दो भागों में जन्मा था एक शिशु। विकृत, विकलांग, तिस पर स्वरहीन। क्या मृत है वह?

---

१. जरासन्ध के जन्म को लेकर एक अद्भुत कथा बहुतेक ग्रथों में एक ही तरह वर्णित है। वह यह कि जरासन्ध दो स्त्रियों के गर्भ से टुकड़ों [illegible] जनमा था। उसे फिकवा दिया गया था, किन्तु जरा नामक राक्षसी ने इन दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया। 'महाभारत' : सभापर्व, अध्याय—१७ में श्लोक-क्रम—२५ से ४० के बीच कहा गया है—"जरा नाम की राक्षसी दैवयोग से उधर से निकली। उसने उन अद्भुत शरीर खण्डों को चौराहे पर पड़ा देख उठा लिया। उस राक्षसी ने, आसानी से ले जाने की इच्छा से दोनों टुकड़ों को एक में मिला दिया। मिलाते ही वे टुकड़े परस्पर जुड़ गये और वह एक सुन्दर बालक बन गया।"

जीवित भी हो, तब भी क्या अर्थ होगा उसका? उसका जनमना-न जनमना सब बराबर। शिशु के दो हिस्से थे। एक पैर अलग, दूसरा अलग। मनुष्य है या राक्षस? भय और आतंक से थर्राती सेविकाएं, धात्रियां भाग खड़ी हुई प्रसूतिगृह से। किस कोने में जा दुबकी, ज्ञात नहीं। खड़ी रह गयी थी केवल जरा। एक पल स्तब्ध, सहमी-सी रही, फिर जैसे अद्भुत संयम और शक्ति से उसने अपने-आपको बटोर लिया था।

दोनों रानियां बेसुध हो चुकी थीं। प्रसूति-गृह प्रकाश के बावजूद सन्नाटे के अन्धकार से भरा हुआ। उससे कहीं अधिक बीभत्सता बिखरी हुई थी वातावरण में।

और इस बीभत्सतापूर्ण सन्नाटे से जूझती हुई एकमात्र जरा! उत्सुकतापूर्वक उसने उस विकृत शिशु को देखा था। विचित्र बात थी। दो माताओं से जनमा था वह। उसी तरह दो खंडित हिस्से थे उसके। क्या यह सहज है?

पर सहज है या असहज? जरा के लिए उस क्षण विचार का विषय नहीं था। उसने तुरंत अपने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे। बालक के उन दोनों विभाजित खंडों को जोड़ा। यह संयोग था या कोई चमत्कार अथवा जरा के प्रसूति-अभ्यस्त हाथों का अलौकिक करतब। बालक ने जोरों से चीख मारी और फिर रुदन करने लगा।

जीवंत! जरा प्रसन्नता से भर उठी थी। उससे कहीं अधिक उसे अपने आप पर ही अचरज हुआ। इस चमत्कार का विचार अवश्य किया था उसने किन्तु बहुत तत्पर प्रयत्न नहीं; पर ऐसा हो गया था।

फिर एक यही असम्भव सम्भव थोड़े हुआ? एक और असामान्य घटना घटी। बालक आश्चर्यजनक रूप से बोझिल अनुभव होने लगा था जरा को। उससे भी अधिक विस्मयकारक था उसका रोदन। यह रुदन

उपर्युक्त अध्याय के ही श्लोक-क्रम ४८ से ५० के बीच जरा, राजा बृहद्रथ से कहती है " 'इसे देखकर मैंने जिलाया है, इसकी रक्षा की है।" यही नहीं, १८वें अध्याय मे जरा पुनः राजा से कहती है····"तुम्हारा कुछ उपकार करने की चिन्ता मुझे सदा लगी रहती थी। तुम्हारे घर में अपना पूजन होने से, तुम पर सन्तुष्ट होकर मैं यह पुत्र तुम को सौंपे जाती हूं।" : अध्याय—१८, श्लोक-क्रम—५ से १०।

कमरे के सन्नाटे को तोड़ता हुआ दूर राज-निवास के गलियारों तक बिखर गया था।



जरा राक्षसी के इस अद्भुत चमत्कार से प्रभावित होकर राजा ने बालक को सदा-सदा के लिए अपनी जन्मदायिनी राक्षसी के नाम पर जाना जाये, ऐसा नामकरण कर दिया था। बालक का नाम हुआ जरासन्ध।

राक्षसी राजा और रानियों को पुत्र प्रदान करके जा चुकी थी। जाते-जाते कहा था—"देखो, राजन् ! तुमने और तुम्हारी रानियों ने मन लगाकर मेरी सेवा-पूजा की, सत्कार दिया। केवल इसी कारण मैं तुम पर प्रसन्न होकर इस पुत्र को जीवन दिये जा रही हूं। वैसे मैं इसका जी जाना तुम्हारे भाग्य का चमत्कार मानती हूं; किन्तु मैं इस चमत्कार की निमित्त बनी हू।"

राजा बृहद्रथ जरा के प्रति उपकृत थे। उससे कहीं अधिक श्रद्धावनत। उन्होंने तरह-तरह से जरा की स्तुति-प्रशंसा की थी। जरा सन्तुष्ट हुई। मगध-भर में जरा के नाम पर उत्सव मनाये जाने की आज्ञा दी थी महाराज बृहद्रथ ने। यही उत्सव जरासन्ध का जन्मदिन कहलाता था।

और यही थी जरासन्ध के जन्म की असाधारणता। इस असाधारणता ने ही उसके बल, शक्ति को लेकर दूर-दूर तक विभिन्न कहानियों को जन्म दिया था। वे न केवल आश्चर्य से सुनी जाती थीं, बल्कि आश्चर्य के साथ स्वीकारी भी जाती थीं।



इसी घटना की असाधारणता को राज-पुरोहित ने स्वीकारा है। बकुल ने सोचा; किन्तु जरासन्ध से जुड़ी अन्य सभी घटनाओं को उन्होंने साधारण मानने से भी इनकार कर दिया है।

वैसा क्यों ? बकुल विश्वास नहीं कर सका। कैसे करे ? महाराज जरासन्ध ने कितने ही राज्यों, राजाओं, उनके समर्थकों से लेकर शुभचिंतकों तक को दास बना रखा है। अपनी शक्ति और सत्ता स्वीकारने के लिए बाध्य किया है। अनेक बार, अनेक दुर्लभ युद्ध किये हैं। बहुत-से असंभवों को सम्भव कर दिखाया है। भला ऐसे जरासन्ध की अद्भुतता को कैसे स्वीकारा जा सकता है ? तिस पर उन्हें साधारण ही नहीं, अति साधारण ...! मानसी वाली घटना के बाद बकुल के मन में जरासन्ध को लेकर

श्रद्धा कम अवश्य हुई है, किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि वह उनके गुणों को ही अस्वीकार कर दे ? उनकी शक्ति, सामर्थ्य, बल और पराक्रम, भला वे सब कैसे अस्वीकारे जा सकते हैं ?

बकुल ने गरदन मोड़ी। राजपुरोहित शान्त बैठे थे। श्वेत, धवल दाढ़ी के बाल रथ की गति के साथ हवा में उड़ते हुए। वृद्ध की दृष्टि कहीं खोयी हुई-सी लगी। पूछा, "क्षमा करें, वृद्धवर ! महाराज जरासन्ध का जन्म असाधारण ढंग से हुआ, यह तो मैं स्वीकारता ही हूं; पर उनका बल, युद्ध-कला, शक्ति, राजनीति सभी कुछ अनेक असाधारणताओं से भरे हुए हैं, यह भी स्वीकारना पड़ता है। मैं उन्हें अतिसाधारण कैसे मानू ?"

राजपुरोहित शान्त भाव से मुड़े। बकुल को इस तरह देखा जैसे किसी छोटे, बहुत छोटे अज्ञानी बालक को देख रहे हों, फिर भारी स्वर में उत्तर दिया—"पुत्र ! तुम क्या सोचते हो कि मनुष्य अपने जन्म को लेकर प्रचलित किसी असामान्य और अस्वाभाविक घटना अथवा अपनी गुणवत्ता के कारण ही असाधारण हो जाता है ?"

"निस्सन्देह पूज्य !" बकुल ने उत्तर दिया—"महाराज जरासन्ध का जन्म दैवीय चमत्कार से हुआ, फिर उनका असामान्य युद्ध-कौशल, बल, साहस, पराक्रम, राजनीति और शक्ति, सभी कुछ तो असाधारण हैं। तब उन्हें साधारण कैसे कहा जा सकता है ?"

राजपुरोहित हंसे। बकुल अबोध बालक की तरह वृद्ध को हंसते हुए देखे गया। वृद्ध ने कहा था—"मैं पहले भी स्पष्ट कर चुका हूं और पुनः वही स्पष्ट करता हूं। ठीक उसी तरह, जिस तरह तुम पहले मगधराज की जिन असाधारणताओं की चर्चा कर चुके हो, उन्हीं को पुनः गिना रहे हो। सुनो !"

बकुल ठीक किसी बालक की ही तरह सुनता गया था और राज-पुरोहित ने जो कुछ कहा, वह सब जरासन्ध की समूची असाधारणता को क्रमशः साधारण ही नहीं अति साधारण या कि सचमुच दरिद्रता की स्थिति तक प्रमाणित करने वाला था।

वह बोले थे—"जरासन्ध का जन्म मैं इसलिए असाधारण मानता हूं, क्योंकि वह विकृत रूप मे हुआ था। खंडित पुरुष ! किन्तु वह कोई ईश्वरीय चमत्कार अथवा अलौकिक घटना नहीं थी, जब उस खंडित बालक को सम्पूर्णता दी गयी। वह जरा राक्षसी का चिकित्सकीय चमत्कार था। कहते

हैं, विकृत सन्तति के जन्म से डरकर उसकी माताओं ने उसे फिकवा दिया था; किन्तु वह जरा नामक एक राक्षसी के हाथ लगा। उसने लम्बे उपचार के बाद उसके खंडित हिस्सों को जोड़ा और महाराज बृहद्रथ को बुलाकर प्रदान किया। बृहद्रथ और उनकी रानियां जो मृतवत् खंडित बालक के होने से लगभग निराश हो चुके थे, प्रसन्नतापूर्वक उसे घर ले आये तथा बाद में प्रचारित किया गया कि राजा ने पुत्रधन प्राप्त किया है, अतः जीवन उसने साधारणता के साथ ही प्राप्त किया।" बोलते-बोलते राजपुरोहित कुछ थमे थे।[1]

"किन्तु महाराज, कहा तो यह भी जाता है कि जरा दैवयोग से उधर निकल पड़ी थी; जिधर जरासन्ध का खंडित शरीर पड़ा था।" वकुल ने राजा की सुनी हुई जन्म-कथा को लेकर तर्क किया।

---

१. जरासन्ध के जन्म की अलौकिक घटना का वर्णन करते हुए महाभारत ने जिस तरह वर्णन किया है, वह बहुतेक प्रश्नों का उत्तर भी दे देता है और बहुतेक सहज प्रश्नों को मन में जन्म देता है। कुछ पंक्तियां ऐसी हैं, जिनके आधार पर जरासन्ध के जन्म को लेकर जो घटना सहज रूप में घटी जान पड़ती है, उसके अनुसार जरासन्ध का जन्म विकृत रूप में हुआ था। जरा नामक राक्षसी राजा बृहद्रथ के राज्य में सम्मान के साथ रहती थी, जैसा कि उसने स्वयं स्वीकारा है…"मैं तुम्हारे राज्य में समुचित सम्मान के साथ रहती हूं।" : महाभारत : सभापर्व अध्याय १८, श्लोक-क्रम १ से १० तक : उसने जरासन्ध की शारीरिक विकृति दूर करके उसे सम्पूर्णता में जीवन दिया। जरा उपरोक्त अध्याय में ही कहती है, "तुम्हारे घर में नित्य गन्ध, फूल, माला आदि पूजन-सामग्रियों से मेरी पूजा भी होती रहती है। तुम्हारे घर में मेरा पूजन होने से, तुम पर सन्तुष्ट होकर मैं यह पुत्र तुमको फेरे देती हूं।"

संभवतः जरा ने विकृत बालक का उपचार किया और उसे ठीक कर दिया। जरा द्वारा उपचार में निश्चय ही समय लगा होगा, क्योंकि सभापर्व के १८वें अध्याय में ही कहा गया है, "राजा बृहद्रथ भी प्रसन्नतापूर्वक उस बालक को लेकर अपने घर आये।"

इससे यह अर्थ भी निकलता है कि जरा ने बालक का उपचार या तो अपने निवास पर किया या फिर राजा द्वारा ही दिये गये निवास पर किया। बाद में वह पुत्र को लेकर अपने घर आये। सभापर्व के उपर्युक्त अध्याय में ही कहा गया है, "जरा ने सन्धित किया, अर्थात् जोड़ दिया, इसी कारण राजा ने उस पुत्र का नाम जरासन्ध रखा।"

राजपुरोहित ने उत्तर दिया—"हां, इसे दैवयोग भी कह सकते हो, संयोग भी, पर जरा को जब खंडित बालक मिला, तब उसने राजा द्वारा अपने प्रति की गई सेवा-पूजा से प्रसन्न होकर उसे जीवन प्रदान किया। इस क्रिया में भी कम समय नहीं लगा था। बालक के उपचार में बहुत दिन व्यय हुए थे।"

बकुल इस नयी जानकारी पर चमत्कृत हो उठा था; पर अब भी उत्तर शेष था। अंश में ही सही; किन्तु बकुल को उत्तर की प्रतीक्षा थी।

राजपुरोहित बोले थे—"निरन्तर अभ्यास और शक्ति संयोजन से अद्भुत क्षमताएं पा लेना असम्भव या आश्चर्यजनक तो नहीं होता बकुल! फिर राजसुत जरासन्ध के लिए मगध में सभी साधन उपलब्ध थे। उन्होंने राजनीति की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की है और सम्पूर्ण श्रद्धा व निष्ठा के साथ की है। वे असाधारण गुण प्राप्त करके भी उनका उपयोग अति-साधारण ढंग से कर रहे हैं। अनेक बार उनकी राज्य लिप्सा, सहज राज-नीतिक मूल्यों की ही अवहेलना नहीं करती, अपितु मानवीय मूल्यों को भी हत करती रही है, इसीलिए कहता हूं कि मगधराज साधारण से भी अधिक साधारण हो चुके हैं। सब कुछ प्राप्त करके भी दरिद्रता का बोध कैसा दुखदायक है!"

बकुल प्रश्नहीन हो गया है। सचमुच दरिद्रता की स्थिति ही तो हुई। सब कुछ प्राप्त करते हुए भी प्राप्त न कर पाने का निरन्तर बोध और क्या है? अनायास ही बकुल का मन मगधराज के प्रति घृणा से भर उठा था।

और अब उसी प्राप्ति की दरिद्रेच्छा में मगधराज अपनी दोनों बेटियों का बलिदान करने जा रहे हैं। बकुल को उसी सिलसिले में स्मरण हो आया है। याद आ गये हैं शब्द, महान् और शक्तिसम्पन्न सम्राट् के शब्द।

बोले थे वह—"यह राजनीतिक सम्बन्ध जब पारिवारिक सम्बन्ध में बदल जायेगा, तब निश्चय ही महाराज कंस की विशाल शक्ति मगध के लिए उपयोगी और सहायक सिद्ध होगी।"

"धिक्कार है!" बकुल का मन और अधिक घृणा से भर आया है। सच ही तो घृणा के ही पात्र हैं जरासन्ध। न होते, तो ऐसी राजनीतिक संरचनाएं करते। फिर यह जानते हुए भी कि कंस राज्यलोलुपतावश अपने ही सगे-सम्बन्धियों, यहां तक कि पिता के भी नहीं हुए, तब भला वह जरा संध की पुत्रियों के प्रति समर्पित हो जायेंगे?

शात है बकुल को। वैसा नहीं होगा। कभी नहीं होगा। इसलिए नहीं होगा कि बकुल ने कंस को खूब देखा-समझा और पहचाना है। उसने मानसी कंस के समूचे प्रकरण को भी जाना-समझा है। एक तरह से मूक-साक्षी रहा है वह।

मानसी! नाम-स्मरण के साथ ही जाने क्यों बकुल को लगा था कि वह मानसी का अपराधी है। गुप्तचर धर्म निबाहने भले ही भेजी गयी हो वह सुन्दरी; किन्तु सरल स्त्रीत्व से परे नहीं हो सकी थी वह, जबकि जरासन्ध की संवेदनहीन राजनीति ने उसे नष्ट कर दिया। अस्त्र रूप में प्रयुक्त हुआ था बकुल।

जरासन्ध से अधिक अपने-आप से घृणा होने लगी है बकुल को। वह उस अनीतिचक्र में किस कारण अस्त्र बना। चाहता तो क्या मानसी की रक्षा नहीं कर सकता था? पर वह सब बातें बाद की हैं। तीव्र गति रथ की ही तरह विचार भी तीव्र गति से उड़ चले हैं। बकुल ने शरीर ही नहीं मन में भी थकान अनुभव की। पलकें मूंदकर चुप हो रहा।

समय बीतता रहा था। बकुल अस्त-व्यस्त मन संजोये न जाने कितनी बार सारथी से पूछ चुका था—"मथुरा के लिए कितना मार्ग शेष है।"

सारथी यांत्रिक भाव से उत्तर दे दिया करता। राजपुरोहित न चाहकर भी बकुल की इस मनःस्थिति की ओर आकृष्ट हुए थे। पूछा—"क्या बात है गुप्तचर! बहुत अशांत हो उठे हो?"

"नहीं-नहीं, वैसा कुछ नहीं है ब्रह्मन्।" हड़बड़ाकर कहा था बकुल ने—"वह तो यूं ही···यूं ही सहज उतावली है मन में।"

राजपुरोहित चुप हो गये, किन्तु उत्तर से सन्तुष्ट नहीं।

बकुल पुनः यहां-वहां देखने लगा। उसे अपने-आप पर ही अचरज हो रहा था। ऐसा तो कभी नहीं होता था उसके साथ। वह निरन्तर असामान्य होता जा रहा था, उससे भी कहीं अधिक ऊबता हुआ।

लगता था मन-कर्म में सन्तुलन नहीं रह गया है। इस असन्तुलन ने जीवनचर्या ही बदल डाली है और जीवन-चर्या के साथ-साथ बदल गया है बकुल। क्या वह सचमुच बदल गया है या बदल रहा है? उसने स्वयं से ही प्रश्न किया। लगा कि अनुत्तरित है प्रश्न! न स्वीकार, न अस्वीकार। क्या होगा उत्तर और कब बकुल के अपने भीतर से जनमेगा, मालूम नहीं।

बकुल ने गहरा श्वास लिया। शान्त होने का प्रयत्न करने लगा।

सारथी ने कहा था—"हम मथुरा की सीमा में प्रवेश कर चुके हैं श्रीमन्!"

राज-पुरोहित और बकुल ने एक-दूसरे को देखा। चुप हो रहे। दृष्टि के सामने कंस का चेहरा उभरने लगा है। बकुल के भीतर एक अज्ञात जिज्ञासा उभर आयी। मानसी के बिना क्या कंस अशांत होंगे और यदि हुए भी, तो क्या उस अशान्ति को उनके चेहरे पर पढ़ा जा सकेगा?

सब कुछ भूलकर मन एक बार पुनः राजाज्ञा के निर्वाह से जुड़ गया। रथ उसी गति से चला जा रहा था।

और कुछ ऐसी ही गति से चलता जा रहा है वसुहोम का मांत्रिक राजकर्म! हर बीतते दिन के साथ कंस तक सूचना पहुंचानी होती है। कारावास की स्थिति क्या है? कौन बन्दी, किस हाल में है?

इस तरह प्रतिदिन कारावास की व्यवस्था-अव्यवस्था में कभी रुचि नहीं लिया करते थे मथुराधिपति; किन्तु इधर निरन्तर रुचि लेने लगे हैं। देवकी गर्भवती जो हुई है और देवकी के गर्भ में कंस मृत्युदर्शन कर रहे हैं।

अनुराधा तत्परतापूर्वक देवकसुता की देखरेख में लगी रहती है। उससे कहीं अधिक व्यस्त रहती है उनकी पीड़ा दूर करने की चेष्टा में। इस तरह शायद देवकी क्रूर भाई के वचन कुछ पल के लिए भूल पाती हों?

किन्तु लगता है, कभी नहीं भूल पाती। आखिर भूल भी कैसे सकती हैं? कारागार का कठोर वातावरण निरन्तर याद दिलाता रहता है उन्हें कि आशंकित नहीं, निश्चित भवितव्य सामने है और वह असहाय!

एक बार चकित होकर अनुराधा से प्रश्न कर बैठी थीं—"अनु! यह कैसे सम्भव है कि समूचा गणसंघ, और गणसंघ के पौरुषेय महारथी योद्धा शान्त बैठे हुए हैं? क्या भइया कंस इतने शक्तिशाली हैं?"

अनुराधा ने इधर-उधर देखा। दृष्टि चौकन्नी थी। वसुहोम ने साव-धान कर दिया था उसे। हर ओर कंटक के गुप्तचर सक्रिय रहते हैं। स्मरण रहे कि अपनी हर गतिविधि, यहां तक कि शब्दों को भी सीमा में

जाया करती।

उसने नई नीति बना ली थी। अनुराधा की उपस्थिति में देवकी से केवल सरल और अति सरल बातें ही किया करती। कभी-कभी तो इतनी सरल हो जाया करती कि अनुराधा का डर बढ़ जाता। इस छल को अनुराधा ही नहीं सह सकती, तब सरलमना देवकी क्या सहेंगी?

वसुदेव को भी सतर्क कर दिया गया था। ऐसा कुछ न कहें या करें, जो चंचला के लिए अर्थयुक्त हो जाये। वसुदेव सतर्क थे; पर देवकी? देवकी बहुतेक चेतावनियों के बावजूद वैसी ही सरल बनी रहीं। बहुत कठिनाई होने लगी थी उन्हें निबाहने में। हमेशा की तरह एक बार फिर देवकी को स्मरण दिलाया था अनुराधा ने—"देवी! आपने पुनः भूल की। वह दुष्टा···!"

"मैं भूल गई थी अनु!" देवकी ने भोली बालिका की तरह उत्तर दिया।

और अनुराधा चुप। मन जितना सहानुभूति से भर आया, उतना ही पीड़ित भी हो रहा। विधि का कैसा अनोखा विधान है! सरलता और खलता को एक ही कसौटी पर कस डाला!



पर यही हो रहा था। कसौटी एक, उस पर सरलता भी कसी जा रही है, खलता भी। मथुरा की स्थिति भी, तो लगभग ऐसी ही है। कसौटी की तरह समूचा गणसंघ, अपने-आप पर सरलता और खलता को एकसाथ कसे जाते देख रहा है।

एक ओर कंस! दूसरी ओर स्वातन्त्र्यप्रिय सभी गणवासी।

एक ओर खलता! दूसरे छोर पर सरलता।

एक राजमहल की दमदमाहट से आलोकित। दूसरा काल के अन्धेरे में अपनी प्रकाश-परीक्षा देता हुआ!

कैसी विडम्बना! अनुराधा की दृष्टि विचित्र-सी रिक्तता लिए हुए जेल के विशाल लौहद्वार के पार दूर तक बिखरे सन्नाटे को देखती जा रही थी, टकटकी बाधे हुए।



"अनु!"

अनुराधा जैसे चौंककर मुड़ी। देवकी का स्वर धीमा था। इतना, जैसे

वह स्वयं से ही कह रही हों—"अब बोलो, क्या सच ही सम्पूर्ण गणसंघ, और उसके शक्तिशाली सभासद, राजा इतने शक्तिहीन हो चुके हैं कि महाराजा कंस का सामना न कर सकें ?"

"नहीं देवी !" अनुराधा ने कहा था—"ऐसा नहीं है।"

"तब ?"

"सम्भवत: मथुराधिपति को बड़ी शक्तियों से सहायता और सहयोग प्राप्त है।" अनुराधा ने उत्तर दिया—"सब जानते हैं कि मगधराज जरासन्ध उनके साथ-सहयोग से ही मथुरा की गणसंघीय पद्धति नष्ट कर सके हैं।"

"पर सखी !" देवकी ने पुनः तर्क किया था, "क्या प्रजा भी मानसिक रूप से दास भाव स्वीकार चुकी है ?"

"नहीं।" अनुराधा ने उत्तर दिया—"सच तो यह है कि नेतृत्वहीन प्रजा बिखरे हुए तिनकों की तरह होती है देवी ! उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, अपना कोई संगठित स्वरूप नहीं और संगठित स्वरूप के बिना लक्ष्य की प्राप्ति केवल दुविधा बन जाया करती है।"

"यदि ऐसा ही है, तब हम सब किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जूझ रहे हैं अनुराधा !" देवकी का स्वर सहसा भर्रा गया था, "किसकी आशा में आस संजोये हुए है ?"

"आशा ही शक्ति होती है देवी !" अनुराधा ने कहा—"महामन्त्री वसुदेव के प्रभावी व्यक्तित्व को कारागार में भले ही बन्द कर दिया गया हो; किन्तु इसी व्यक्तित्व के नाम पर जनाशा बनी रहेगी। यदि यह आशा ही टूट गई, तब निश्चय ही दासत्व आ चुकेगा।"

देवकी चकित हो रही। अनुराधा से नीति की बातें सुनना ऐसे ही लगता था, जैसे किसी विद्वान ब्राह्मणी के सामने बैठी हो; पर अनुराधा ब्राह्मणी नहीं थी। वह थी एक सहज साधारण सेविका। भला सेविका के पास इतना ज्ञान कहां से और कैसे आया ! एक बार उत्सुकतापूर्वक पूछ भी लिया था, "अनु ! एक बात पूछूं, उत्तर दे सकोगी ?"

अनुराधा ने मुसकराकर उन्हें देखा। कहा—"आप आज्ञा कर सकती हैं, देवी !"

"तुमने यह नीति-ज्ञान कहां से जाना-सीखा ?" देवकसुता सरलमन प्रश्न कर बैठी।

अनुराधा हंस दी। एक गहरा श्वास लेकर उत्तर में केवल इतना ही कहा था—"मैं नहीं जानती स्वामिनी ! पर कहीं कोई अदृश्य शक्ति है, जो मुझसे यह सब कहलवाती है।"

"तुम छिपा रही हो, अनु !"

"मैं स्वामिनी से असत्य सभाषण का पाप नहीं कर सकती देवी !" अनुराधा ने शांत भाव से उत्तर दिया था।

और देवकी विचित्र-सी स्नेह-भरी दृष्टि से देखती रह गई थी उसे। आज फिर वही स्नेह दृष्टि उभर आई है आंखों में। शब्द कानों में गूंज रहे हैं। गुंजन के साथ ही सुख भी मिल रहा है। कारागार के अन्धकार की कठोर, कटुता से भरा जीवन भी सहसा आलोकित हो उठा है।

"महामन्त्री वसुदेव के प्रभावी व्यक्तित्व को कारागार में भले ही बन्द कर दिया गया हो; किन्तु इसी व्यक्तित्व के नाम पर जनाशा जीवित रहेगी। यदि यह आशा ही टूट गई, तब निश्चय ही दासत्व आ चुकेगा।"

यह नीति वाक्य है या कठोर शिलावत् सत्य। देवकी ने विचार किया था। लगा कि सत्य ही है। केवल सत्य। कल ही तो वसुहोम समाचार लाए थे। समाचार उन्होंने दबे-मुंदे शब्दों में वसुदेव को दिया था—"पूज्य! शूरसेन जनपद के अनेक अंचलों में असन्तोष बढ़ रहा है। गोकुल, वृन्दावन, भाडीर आदि क्षेत्रों में आपको बन्दी बनाये जाने की बहुत कठोर प्रतिक्रिया हुई है।"

"क्या कहते हैं लोग ?" वसुदेव ने पूछा था।

"केवल यही कि इस सबका अन्त उचित नहीं होगा।" वसुहोम ने उत्तर दिया था—"एक न एक दिन महाराज कंस इस सबके कुपरिणाम अवश्य ही भोगेंगे।"

"कैसे कुपरिणाम ?"

उत्तर में वसुहोम हंस दिया था—"सभी को विश्वास है कि उनका त्राता माता देवकी के गर्भ से अवश्य ही जन्म लेगा।"

"किन्तु जान तो चुके हो तुम।" वसुदेव खोखली हंसी में हंसे थे—"क्रूरबुद्धि मथुराधिपति देवी देवकी के हर शिशु का वध करने को उद्यत हैं। सुना नहीं था तुमने? तब त्राता कैसे बच सकेगा?"

"विधि का विधान कोई बदल नहीं सका है देव!" वसुहोम ने सिर [illegible] दिया था—"साधना करना साधक का कर्म होता है महा-

राज ! पर सिद्धि कब होगी, यह सिद्धि पर ही निश्चित है।"

वसुदेव चुप हो रहे थे।

□

और आज अनुराधा के ये शब्द ? देवकी ने अनायास ही वसुहोम की उस बात से अनुराधा की बात का सिलसिला बैठाना प्रारम्भ कर दिया था। जीवित जनाशा और विधि का विधान ! इस सबके बीच वसुदेव और देवकी क्या है ?

केवल साधक और उनका धर्म केवल साधना ! सिद्धि—स्वयं सिद्धि के हाथ ! मन विश्वास से भर उठा था। जब-जब अविश्वास के थपेड़े मन को अकुलाते हैं, तब तब विश्वास के यही झकोरे आकर उन्हें शान्त कर देते हैं। इसी तरह बीत रहे है दिन और इसी तरह हर बीतते दिन के साथ गर्भ भी पनपता जा रहा है।

और इसी तरह हर बीतते पल के साथ जन-विश्वास दृढ़ और दृढ़तर होता जा रहा है। एक-न-एक दिन त्राता अवश्य आयेगा। यह विश्वास ही उनकी शक्ति और इस शक्ति के स्रोत वसुदेव-देवकी।

□

शक्ति और स्रोत के इस रहस्य से कंस अपरिचित नहीं हैं। गोकुल, वृन्दावन, भांडीरवन और अन्य जनांचलों में क्या कुछ कहा-सुना जाता है, कंस जानते हैं। सूचनाएं भी निरन्तर प्राप्त होती रहती हैं। केशी, प्रद्युम्न, चाणूर और मुष्टिक आदि निरन्तर समाचार देते हैं। इन समाचारों पर ही रणनीति बनती है, कूटनीति का आयोजन होता है।

हर समय यही चेष्टा करते हैं कि गणसंघ की स्वतन्त्रता-भावना विलुप्त होती जाये। उसकी जगह धीमे-धीमे ही म.ो; किन्तु महाराज कंस की शक्ति-सत्ता स्वीकारें लोग। राज्य की ओर से अनेक सुविधाएं भी दी गई हैं गणवासियों को। अनेक आकर्षण उपलब्ध कराये जा रहे हैं। भांति-भांति के समारोहों का आयोजन होता रहता है।

फिर भी लगता है कि कहीं कुछ ऐसा है, जो शेष नहीं होता। भला भौतिक और दृष्टिगत कारणों या अकारणों से भावनाओं को बदला जा सकता है ! उन विचारों को मन से हटाया जा सकता है, जो जन-जन के मन तक जड़ें जमाये हुए हैं।

अतः शक्ति-संयोजन भी करते रहना पड़ता है।

पड़ोसी राज्यों से मैत्री सम्बन्ध दृढ़ करते जा रहे हैं। चेदिराज, करुपराज, विदर्भराज सभी से सम्बन्ध गहन किए जा रहे हैं। कभी मथुराधिपति उनके अतिथि होते हैं, कभी उनका आतिथ्य सत्कार करते हैं।

अपनी शक्ति भी बहुत बढ़ाई है। दिन-रात एक कर दिया है सेना के आयोजन मे। विविध अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न किया है सैनिकों को। बहुविध दुर्लभ, मारक और संहारक अस्त्र एकत्र कर लिए हैं। मथुराधिपति की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है और इस शक्ति के साथ ही अपने आगत मृत्यु-भय से भी सतर्क रहते हैं वह। वसुदेव-देवकी पर सदा ही दृष्टि रखी जाती है।

जटिल स्थितियों में मानसी अनायास ही स्मरण हो आती है। बहुत दुखद अन्त हुआ था उसका। मथुराधिपति कठोर है, संयत स्वभाव हैं, नीतिज्ञ हैं और कभी-कभी पाषाणवत् भी हो उठते हैं; किन्तु मन के न जाने किस अदृश्य स्रोत से मानसी का स्मरण तरल जल की भांति बहने लगता है। वे क्षण असहज बना जाते हैं। लगता है कि सभी ओर रिक्तता बिखर जाती है मन में।

आज भी जब वसुहोम की ओर से समाचार आया था, "देवकसुता अपनी पहली संतान को जनम देने वाली हैं।" तब त्वरित उत्तर नहीं दे सके थे। भले ही निर्णय कर लिया हो कि बहिन की हर सन्तान को नष्ट कर देंगे; किन्तु ठीक समय मन अकुला गया। सन्देशवाहक से केवल यही कहा था—"ठीक है। कारागार अधीक्षक से कहना, समाचार मिला। हम उचित अवसर पर आयेंगे!"

लौट गया था वह और कंस अन्यमनस्क भाव से कक्ष में चहलकदमी करने लगे थे।

देवकी का पहला पुत्र! लगता था कि मन में निश्चय स्वर बनकर उभरता है—"विचार का अवसर ही कहां है वीर! अपने कालजन्म की सूचना पाकर भी निश्चिन्त क्यों बैठे हो? कुछ करो!"

"क्या?" लगा था कि स्वयं से ही पूछ भी रहे हैं।

"क्या स्मरण नहीं तुम्हें, देवकी की हर सन्तान नष्ट करनी है?" मन ने ही जवाब दे दिया था—"यही निर्णय तो किया था तुमने? जाओ, वध करो उसका!"

पर मुड़ नहीं सके। क्या हो गया है उन्हें? उनके शरीर को? उनकी

निश्चय शक्ति को ? ऐसे असंयत तो कभी नहीं होते थे कंस ?

"होते थे।" वह जैसे अपने से ही कह उठे—"निश्चय ही ऐसा होता था; किन्तु उस समय मानसी उनके पास होती थी वहीं उनकी शक्ति बनती थी, वही निर्देशक…।"

किन्तु मानसी तो बीत चुकी है। केवल स्मरण-शेष रह गया है उसका ?

और कंस को लगा कि सोता फिर रिस आया है। स्मरण भर से तरल हो उठते है वह। कंस की हर उत्तेजना, व्यग्रता और अशान्ति के जलते पलों को मानसी ने अपनी लम्बी केश राशि की छाया देकर शीतलता में बदल दिया था और आज पुनः वह स्मरण हो आयी है।

वह नही स्मरण हो आयी, अपितु जलन उठी है। देवकी के पहले पुत्र के जन्म के साथ ही प्रश्न जलन बनकर अशान्त करने लगा है उन्हें। क्या करे ? वध कर दें उसका ? उस वध की क्या जन-प्रतिक्रिया होगी और अपने ही हाथों अपनी ही बहिन के पुत्र का वध कर पाना सहज-सरल होगा क्या ? कंस उस क्षण संयत रह सकेंगे ? कितने ही प्रश्न !

हर प्रश्न का उत्तर मानसी ! जब-जब मन किसी प्रश्न के प्रति निरुत्तर हो जाया करता था, तब-तब मानसी के पास ही पहुँचा करते थे वह और मानसी हर प्रश्न का उत्तर इस तरह दिया करती थी, जैसे नीति की धुँधली राह को मस्तिष्क में बुहार रही हो, वह रही राह। उस राह चले जायेंगे कंस, तो सब सुविधापूर्वक, सहज और अनुकूल हो जायेगा।

हर बार यही हुआ था। हमेशा होता, यदि मानसी रही होती।

कंस बैठे रहे। गले का थूक निगला। न जाने कैसे और क्यों उनका गला भर आया—"मानसी !" वह बुदबुदा पड़े थे।

लगा कि मानसी के नाम की यह बुदबुदाहट समूचे राजमहल के कूल-कगारों में गूँज गई है। पुकार की तरह—"मानसी…! मानसी…! मानसी !"



गूँज के बाद गूँज और हर गूँज विशाल राजभवन की छत से टकराकर धरती पर बिखरती हुई। ऐसे जैसे जल बरसने लगा हो।

मानसी खाली पलों मे इसी तरह गूँजती है। कंस व्यग्र होकर लेट रहे। पलकें मूँद लीं। सेविका भोजन के समय की सूचना देने आयी थी। मथुराधिपति को पलकें मूँदे लेटे पाकर चुपचाप लौट गई।

भूखे थे वह; पर अनुभूतिशून्य ! अनुभूति केवल मानसी की, उन पलों की, जब मानसी से विलग हो गए थे वह। बहुत पता करवाया था उन्होंने। क्या हुआ था उसे ? कहां जा रही थी वह ? रथ दुर्घटनाग्रस्त कैसे हुआ ?

किन्तु किसी से कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। केवल इतनी सूचना पा सके थे कि देवी मानसी को रथारूढ होकर सेविका के साथ जाते देखा गया था।

पर सेविका कहां गयी ? उसका तो शव भी नहीं मिला ? कंस को अनायास ही मानसी की मृत्यु अस्वाभाविक लगने लगी थी। समूचे जन-क्षेत्र में खोज के आदेश दिए गए थे। जहां भी वह मिले, ले आया जाये।

स्वयं चित्रसेन भी चकित था। खोज-खबर की गई। स्वयं मथुराधिपति कंस दुर्घटनास्थल पर पहुंचे थे। मानसी का क्षतविक्षत शव देखकर विचलित हो गये थे। आश्चर्य ! क्या सच ही विधि कुछ है और उसका विधान भी कुछ होता है ? ईश्वर की सत्ता के प्रति सदा ही शंकित रहे थे वह, पर इस शंका को मानसी के निधन ने कुछ झकझोर डाला था। लगा था कि यह है !

न होता, तो मानसी का रथ उसी तरह, उसी स्थिति में क्षतिग्रस्त हुआ होता, जिस तरह हुआ है ? वही जगह, वही स्थान, वही मुद्रा। कभी इसी जगह से जीवित पाया था उसे। किसी वरदान की तरह और वही स्थान था, जहां से खो गई थी वह। किसी अभिशाप-सी !

अनायास ही कंस अपने भीतर डर गये थे। डर की बात थी। यदि ईश्वर नहीं है, तब जीवन और मृत्यु एक तरह, एक ही ढंग से कैसे होते हैं ?

कंस अस्त-व्यस्त हो उठे। भूल गये कि अभी-अभी देवकी के पुत्र को लेकर सूचना पायी थी उन्होंने। मानसी मन के हर कोने पर बादल की तरह सघन होकर छा गई। गहरी, काली घटा जैसी ! वह दिन, जब कंस मथुराधिपति का मुकुट माथे चढ़ाये, चारों ओर से जय-जयकार और समर्थन प्राप्त करके मथुरा के राजमहल में बैठे थे, तभी ज्ञात हुआ था उन्हें।

मथुरा नगरी के बाहर से आये एक वणिक ने सूचना दी थी— "राजमार्ग से बहुत दूर मथुरा की सीमा पर एक रथ क्षतिग्रस्त पड़ा है। कोई युवती उसमें हत हुई है।"

कंस ने आदेश दिये थे—"ज्ञात करो, किसका रथ है, कौन था उसमें ?"

और थोड़ी ही देर बाद सूचना आ गयी थी—"वह रथ गन्धर्व कन्या मानसी का था और शव भी उन्हीं का है।"

कंस को लगा था कि वज्रपात हुआ है। सूचना सुनकर अपने-आप को संयत नहीं रख सके थे वह। आसन से उठ खड़े हुए थे—"क्या अ ?"

[]

सन्देशवाहक ने सिर झुका लिया था। सब जानते थे कि गन्धर्व-कन्या के प्रति महाराज कंस विशेष कृपालु हैं। बहुत बार तो कंस की प्राप्ति के लिए अनेक लोग मानसी की कृपा प्राप्ति आवश्यक समझते थे।

कंस खड़े थे। चेहरे की दमदमाहट अनायास ही कालिख से भर गयी थी; पर दृष्टि में अविश्वास था। लगता था कि कहेंगे—"असंभव ! यह कैसे हो सकता है ?"

और यही बोले थे वह—"असम्भव ! भला देवी मानसी वहां क्यों जाने लगीं ?" नया आदेश दिया था उन्होंने—"देवी के गृह पर उन्हें देखो, हो सकता है कि कोई उनसे उनका रथ उधार ले गया हो।"

पर सन्देशवाहक खड़ा रहा। कुछ संकोच के साथ उत्तर दिया था उसने—"राजन् ! देवी मानसी अपने गृह पर नहीं हैं।"

"नहीं हैं ?" दूसरा; किन्तु हलका धक्का लगा था मथुराधिपति को—"यह कैसे हो सकता है ?"

सन्देशवाहक चुप रहा।

"चित्रसेन !" कंस मुड़े।

चित्रसेन आगे आ गया। सिर झुकाया। कहा—"आज्ञा, महाराज !"

"देवी घर पर नहीं है और यह समाचार···।" वह टूटे-टूटे असंपृक्त शब्द बोल रहे थे—"विश्वास नहीं होता। हम स्वयं चलते हैं।"

और चल पड़े थे वह। वायुगति से रथ तक पहुंचे और वायुवेग से रथ को उस दिशा में ले चले। सारी राह कुछ नहीं बोले थे वह। न ही कुछ सुना था। केवल राह देखते गये और फिर जा पहुंचे थे उस स्थान पर, जहां रथ था। साक्षात् समाचार ? समाचार की पुष्टि में बिखरे उसके खंड-खंड !

रथ रोककर उतरते समय कदम थरथराहट से भरे हुए थे। जैसे-तैसे उनको संभाला था, फिर बढ़ चले उस ओर, जिस ओर एक युवती का क्षत-विक्षत शव दीख रहा था।

मन धक्का खाकर सहमा हुआ। स्वर जिह्वा से बिछुड़कर कहीं खोये हुए और दृष्टि पथरायी-सी। देर तक मानसी को देखते रहे थे। सहसा ध्यान गया था। मानसी के शरीर का बहुतेक भाग कपड़ों से खाली था। कभी का सुन्दर, मांसल, जीवंत और चंचल शरीर; पर इस क्षण जड़! रेत के अस्तव्यस्त ढेर जैसा।

जाने क्यों सेवक को आदेश न देकर स्वयं ही झुके और शरीर का बहुतांश अपने कन्धे पर पड़े बहुमूल्य शाल से ढंक दिया था उन्होंने, फिर घुटनों के बल बैठे ही रह गये। सहसा स्मरण हो आया था कि राजपुरुष हैं। इस तरह असहज होना उनके लिए शोभाजनक नहीं। गहरा सांस लेकर उठे। आदेश दिया था—"देवी के शव को आदर सहित मथुरा ले आया जाये।"

वह चल पड़े थे। कितना मन हो रहा था कि फिर मुड़ें। एक बार पुन: दृष्टि भरकर मानसी को देख लें। मृत ही सही; किन्तु देखें।

मन थाम लिया था। नहीं, यह सब करना उचित नहीं होगा। कंस मथुराधिपति हैं। उन्हें अपने-आप को इतना कोमल, कातर व्यक्ति नहीं बनाना चाहिए। राजगरिमा तो कम होगी ही, असामान्य से सामान्य दीखने लगेंगे और यह सब सेवकों के सामने व्यक्त करना तो कदापि उचित नहीं। रथ पर आ बैठे। कहा था—"चलो!"

रथ दौड़ पड़ा था मथुरा की ओर; पर लग रहा था, मन मानसी के पास खड़ा रह गया है। वैसा ही घुटनों-घुटनों, दृष्टि भरकर सुन्दरी मानसी को निहारता हुआ, अपलकित।



बहुत चाहकर भी उस दिन और कुछ न तो कर सके थे, न ही विचार पाये। कभी-कभी अपने पर ही आश्चर्य होने लगता था उन्हें। क्या हो गया है कंस को? कठोर, केवल पुरुष मात्र समझते रहे मथुराधिपति को? मन में कहां, किस जगह रिसन बिखरी हुई है और कौन-सा अदृश्य भाव है, जो मानसी को रह-रहकर चित्रित कर देता है, नहीं मालूम।

मालूम कर पाते, तो उस भाव को कुचल देते। राजपुरुष के लिए यही उचित होता है, यही उसकी सामान्यता है। यही सहजता।

पर ज्ञात ही नहीं हुआ या ज्ञात कर नहीं सके। कर नहीं सके, यही कहना उचित होगा, पर इतना जान गये थे कि कहीं मनुष्य हैं। बहुत प्रयत्न के बावजूद अपने भीतर अदृश्य भाव से बैठी संवेदना को थाम नहीं सके

है। इच्छानुसार बन्दी नहीं बना पाये हैं।

पर यह करना होगा। न कर सके, तब राजनीति और कालचक्र की समय धारा से जुड़ नहीं सकेंगे। राजनीतिज्ञ बनने और कालगति से जूझते रहने के लिए निर्मोही होना आवश्यक है और मोहहीनता के लिए अपने-आप को कठोर रखना और बड़ी जरूरत।

यह कठोरता ही तो होती है, जो राजदंड का शक्ति के साथ निर्वाह कर सकती है। यही कठोरता होती है, जिससे सत्ता को सहेजा जा सकता है, संभाला जा सकता है, विस्तृत किया जा सकता है। यही कुछ सीखा-समझा था।

पर एक बार भूले-भटके पिता उग्रसेन के समय मथुरा में पधारे हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ कृष्ण द्वैपायन से भेंट हो गयी थी। पिता के साथ उनसे चर्चा लाभ करने बैठे, तो वह बोले थे—"मोहहीन होने के लिए संवेदनहीन होना आवश्यक नहीं होता राजन्! मोहहीनता एक यौगिक और ज्ञानतत्त्व से पूर्ण स्थिति है। उसकी प्राप्ति के लिए दूसरों को जय करने, दूसरों पर आदेश चलाने के बजाय स्वयं को जय करना आवश्यक है।"

उलझ गये थे कंस। तब मथुराधिपति नहीं थे। थे केवल युवराज कंस। स्वर से लेकर विचारों तक कठोरता और केवल पाषाणवत् कठोरता ही समायी हुई थी। इसीको राजगुण समझते थे वह। लगता था कि इसी से राजनीति का वाञ्छित दिशा में संचालित करने के लिए मोहहीनता जनमती है। पर व्यास का यह तर्क!

अचकचाकर पूछ लिया था—"पर महाराज! राजतेज के लिए मोहहीनता आवश्यक है और मोहहीनता के लिए संवेदनशून्य होना अनिवार्य हो जाता है। यह संवेदन अनेक बार मनुष्य को भावुक बना देता है। इससे मुक्ति पाये बिना भला जनहित और राजहित में कठोर निश्चय कैसे लिए जा सकते हैं?"

कृष्ण द्वैपायन ने उन्हें देखा। ऐसे जैसे व्यक्तित्व का ही संपादन कर रहे हों। खंड-खंड कंस को आंकते, समझते हुए। दृष्टि से पोर-पोर तक परख लिया था उन्हें। ऋषि की कृशकाया के बावजूद दृष्टि इतनी तीखी थी कि उसका सामना नहीं किया जा सकता था। वेदव्यास कहलाते थे वह। बोले—"देखता हूं राजसुत! तुम मनुष्य होकर राजनीति पर विचार नहीं कर रहे हो, राजनीतिज्ञ होकर मनुष्य पर विचार कर रहे हो। विचार की

यदि मूलधारा ही बदली हुई हो, तब उसके समग्र विस्तार को लेकर कहना या समझाना कठिन बात है।"

कंस ने अधिक उलझकर प्रश्न किया था—"कैसी मूलधारा महाराज!"

"सुनो!" व्यास बोले—"राजनीति मनुष्य संचालित है। मनुष्य राजनीति से संचालित नहीं होता। मानते हो ना?"

"मानता हूं।"

"तब मनुष्य होकर राजनीति पर विचार करो। यह हुई मूलधारा।" महर्षि ने शान्त स्वर में उत्तर दिया।

कंस स्तब्ध-से देखते रहे। पिता मुसकरा रहे थे उनकी ओर। जैसे प्रसन्न हो कि पुत्र को बहुत कुछ सीखने-समझने को मिल रहा है विद्वान ब्राह्मण से। इसी कारण तो आये दिन ऋषियों, ब्राह्मणों का सत्कार किया करते थे वह।

"मनुष्य होते ही बहुतेक गुणावगुण, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ, उचित-अनुचित तुम्हारे सामने आ जायेंगे।" ऋषि ने कहा था—"कठोरता भी, सहजता भी। दया भी और क्रूरता भी। संवेदना भी और संवेदनहीनता भी। मोह भी और मोहहीनता भी। इन सभी के भंडार में से श्रेष्ठ और उचित का समयानुसार चुनाव करना तुम्हारे वश में हो जायेगा; किन्तु राजनीतिज्ञ होकर विचार करोगे, तो इनमें से चुनाव के लिए केवल स्वार्थ रह जायेगा, शेष कुछ नहीं। तब मोहहीन कैसे होगे, केवल मोहयुक्त हो जाओगे! उससे भी अधिक मात्र मोह! तुम्हारा अपना व्यक्तित्व तो शेष रहेगा ही नहीं।"

शान्त भाव से बैठे हुए महाराज उग्रसेन सुनते रह गये। कंस स्तब्ध! समझ रहे थे, किन्तु चाहकर भी सहमत नहीं हो पा रहे थे। विद्वान, तपस्वी ऋषि से तर्क-वितर्क की शक्ति नहीं थी उनके पास या यों कि संभवत: क्षमता ही न थी। जो निर्णय लेते थे, विचार-विमर्श से नहीं, स्वयं अपने-आप से निर्णय लेते थे। केवल बुद्धि से जनमते थे विचार। विचारों पर निर्णय होता था; किन्तु ऋषि बुद्धि से अतिरिक्त बात कर रहे थे। बड़ी बारीक तत्त्व की बात। वह विवेक से विचार का आरंभ चाहते थे। गलत नहीं लगता था।

किन्तु अनुकूल भी नहीं लग रहा था कंस को। इतना उलझाव कौन झेलेगा। इतना चिन्तन-मनन करके श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ पर निर्णय करने का कष्ट कौन सहेगा? राजा है, राजस्व तेज का निर्णय ही न्याय। जीवन जीने का

यही आसान तरीका लगता था।

"बोलो, राजसुत ! प्रश्न नहीं करोगे ?" व्यास की तीखी दृष्टि उन पर ठहरी हुई थी।

"हूं···हां-हां···अवश्य।" कंस को लगा था कि जिज्ञासु न होना या अपने-आप को जिज्ञासु प्रकट न करना भी उनके लिए मर्यादायुक्त न होगा। पूछा था—"मोहमुक्ति राजत्व के लिए आवश्यक नहीं, अपितु पहली और अनिवार्य आवश्यकता है। माता, पिता, बन्धु, बान्धव, सखा-सम्बन्धी सभी से मोहमुक्त होकर ही राजा, राजा बनता है। यही न देव !"



व्यास तुरन्त बोले नहीं। केवल तीखी, लगती निगाहों से उन्हें देखते रहे। थोड़ी देर बाद महाराज उग्रसेन से कहा था —"मथुराधिपति ! देखता हूं कि तुम्हारा पुत्र केवल बुद्धि संचालित है; पर मात्र बुद्धि से सत्ता नहीं संभाली जाती।"

कंस आहत हुए। क्रोध भी आ गया था उन्हें। यह दुष्ट ब्राह्मण उन्हीं से पूजा करवाकर उन्हीं को मूर्ख कह रहा है, अयोग्य बतला रहा है। जी हुआ था, उसी क्षण राज्य सीमा से बाहर निकलवा दें, किन्तु महाराज उग्रसेन के रहते संभव न था। ब्राह्मणों के प्रति अत्यधिक भावुक और सहृदय होने के साथ-साथ श्रद्धालु भी थे वह। हाथ जोड़कर राजा ने क्षमा-याचना की थी उनसे, कहा था—"ब्रह्मन् ! युवराज को क्षमा कर दें। प्रश्न करना तो चाहता है; किन्तु संभवतः अभिव्यक्ति नहीं कर पा रहा है। मैं स्पष्ट करता हूं।" कुछ पल वृद्ध राजा रुके, फिर कहा था—"युवराज यह जानना चाहते हैं कि परिवार और परिजनों से मोहमुक्त हुए बिना राज्य कैसे किया जा सकता है ?"

"किन्तु केवल परिजनों, परिवार या मित्रों से मोहहीन हो जाना तो मोहमुक्त हो जाना नहीं है उग्रसेन।" ऋषि ने उत्तर दिया—"मोहहीन होने का अर्थ है, अपने प्रति भी मोहमुक्त होना। अपने प्रति मोहमुक्त हुए बिना, दूसरों के लिए मोहहीन हो जाना तो केवल कठोरता और निर्दयता हो जायेगी और राजा कठोरता, निर्दयता, संवेदनहीनता से राजा नहीं बनता, अपितु राजा बनता है सम्पूर्ण सरलता, सहजता, संवेदना और समर्पण से। उसकी मोहमुक्ति उसे सम्पूर्णता देती है। तुम्हारा पुत्र मोहहीनता का अर्थ ही दूषित किये दे रहा है। वह मनुष्य होकर विचार नहीं कर

रहा। उसने जितनी जिज्ञासाएं भी की हैं, मनुष्यभाव से नहीं, राजा के भाव से की हैं। ऐसे व्यक्ति को ज्ञान मिले, विवेक जागृत हो, असम्भव है। 'स्वर के अन्तिम क्षणों में कंस ही नहीं महाराज उग्रसेन को भी लगा था कि ऋषि क्रोधित हो गए हैं। एक भय व्याप गया था मन में—श्रापभय !

इसीलिए इन ब्राह्मणों, तपस्वियों को बुलाते नहीं थे राजकुमार। अपरोक्ष रूप से किस पल, क्या कर डालेंगे, क्या कह देंगे, तय नहीं। लगता था कि इन्हें बुलाना, आफत बुलाना है। चुप रहे थे कंस। चुप हो रहे थे या बेबस हो गये थे ?

पर उस क्षण महर्षि से जितनी विरक्ति हुई थी, इस समय वह उतने ही याद आने लगे हैं। उनका हर शब्द, शब्द का मर्म !

रथ संचालित करते गये वह। रथ की तेज गति और ध्वनि ने भी उन्हें विचलित नहीं किया था। कितना सच था व्यास का कथन। मनुष्य होकर राजनीति पर विचार करो। यही कुछ तो कहा था उन्होंने। और मानसी के असामयिक निधन ने सहसा मनुष्य बना दिया था उन्हें या केवल स्मरण दिलाया था कि वह मनुष्य हैं ?



असन्तुलन और अस्तव्यस्तता के अनेक पहर काटकर सहसा वह पुनः राजपुरुष हो गये थे। वही कठोर, पाषाण पुरुष। मोहहीनता की अपनी ही बनायी अर्थवत्ता से जुड़े हुए।

विचारशेष नहीं हुए थे कि सेवक उपस्थित हुआ। महाराज कंस ने चेहरा उठाकर उसे देखा।

सेवक ने नम्र स्वर में निवेदन किया था—"महाराज की जय हो ! कारागृह से पुनः सूचना आयी है, देवकसुता को पुत्र प्राप्ति हुई !"

कंस सब कुछ भूलकर उठ पड़े। ऐसे जैसे अब तक भयावह जंगल में भटके हुए थे। कहा—"रथ तैयार करो !"

सेवक आज्ञा निबाहने दौड़ पड़ा। रथ तैयार हुआ। कुछ पलों बाद मथुराधिपति उसमें आ बैठे और रथ तीव्र गति से कारागृह की ओर दौड़ पड़ा।



मार्ग में ही ज्ञात हुआ था। राजपथ से कारागार की ओर मुड़े, तब सहसा रथ को रुकने का संकेत किया गया। सारथी ने लगाम खींची। कंस

अकचकाये, कौन है जो बिना राजाज्ञा मथुराधिपति के रथ को रुकने का संकेत कर रहा है ? पूछें, इसके पूर्व ही एक सैनिक आ खड़ा हुआ था—"अपराध क्षमा करें, महाराज। किन्तु सूचना आवश्यक थी। मगधराज का सन्देशवाहक आया है। रथ एक ओर रोक दिया है उसका।"

मगधराज का सन्देशवाहक ? कंस चौंके; पर तुरंत संयत किया अपने-आप को। कहा था—"राजनिवास के अतिथिगृह में सम्मानपूर्वक ठहराओ उन्हें। हम अभी उपस्थित होते हैं।"

"जो आज्ञा !" सैनिक लौट गया। रथ पुनः चल पड़ा था कारावास की ओर। शान्त रहना चाहते थे। बने भी हुए थे; पर लगता था कि घोर अशान्ति से भरे हुए हैं। रथ के हर चक्र की गति के साथ-साथ मन भी अनेक प्रश्नों से भरा हुआ। प्रश्न-चक्र। प्रश्न के बाद प्रश्नों का एक सिलसिला !

जो निर्णय ले चुके हैं और जिस निर्णय को कार्यान्वित करना है, कर सकेंगे ? सहज रहकर कर सकेंगे ? देवकी का चेहरा रह-रहकर आंखों के आगे उभर आता है। वसुदेव उतने स्मरण में नहीं है, न ही ठहर पाते हैं, जितनी देर देवकी आ थमती हैं। मूक होते हुए भी बहुत कुछ कहती हुई। शान्त रहकर भी घोर अशान्ति से भरी हुई। सामान्य दीखते हुए भी असामान्य।

कंस किस तरह वध करेंगे अबोध शिशु का ? कंस ने गले का थूक निगला। लगा था कि अपने ही भीतर धिक्कार से भर उठे हैं वह। वीर, पराक्रमी, बली, समर्थ मथुराधिपति कंस और एक बालक की हत्या ! सद्यो-जात बालक।

इतने भयातुर कंस ! इतने कमजोर ! इतने कातर ! इतने कायर !

कंस के भीतर हलचल-सी हो उठी। जाने क्यों, शरीर कम्पन से भर आया। जो सुनेगा, उसे कितनी ग्लानि होगी कंस पर ! कितनी घृणा ? कंस अनायास ही सही; पर अपने-आप को कायर तो सिद्ध कर ही देंगे ! मृत्युभय से आक्रांत एक साधारण पुरुष ! इतने आक्रांत और थके हुए कि बालक से भयभीत !

पर यह करना होगा। यह भी तो कर सकते हैं कि देवकी की सात सन्तानों को हत न करें। केवल हत करें आठवें को। वही तो है, जो उनकी मृत्यु-आशंका बना हुआ है। वही है, जिसे लेकर कहा-सुना है ज्योतिष-ज्ञाताओं ने।

किन्तु समाचार यही था कि वसुदेव-देवकी के पुत्र से भय है कंस को और यह देवकी की किसी भी संतति में साक्षात् हो सकता है अतः कंस को क्रूर बनना ही होगा। कोई कुछ भी कहे, कहता रहे। उन्होंने जबड़े कस लिये। संवेदन का हर कोमल विचार जैसे दाढ़ों में दबोचकर हत कर दिया।

रथ कारागार के मुख्यद्वार पर पहुंच चुका था।

□

अतिथि-गृह में आगत अतिथियों के स्वागत-सत्कार की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई थी। राज-पुरोहित और बकुल प्रसन्न हुए।

पुरोहित बोले थे—"वत्स! निरन्तर यात्रा के कारण थक गया हूं मैं। विश्राम करूंगा। महाराज कंस पधारें अथवा उनका कोई सन्देश आये, तो भेंट के लिए कल का समय लेना।"

"जैसी आपकी इच्छा ब्रह्मन्!" बकुल ने श्रद्धा से सिर झुका दिया था। राजपुरोहित शयन-गृह में चले गये।

बकुल भी थकान अनुभव कर रहा था; किन्तु मथुराधिपति ने कहलवाया था कि वह अभी उपस्थित होते हैं। स्वयं उपस्थित होंगे? चकित हुआ था बकुल। विशाल शूरसेन जनपद के प्रमुख स्वयं आयेंगे बकुल से भेंट करने?

वह नहीं आयेंगे। सम्भवतः महाशक्तिशाली जरासन्ध की शक्ति लायेगी उन्हें। बकुल को अपने भीतर से ही उत्तर मिला। यह भी हो सकता है कि अतिथि-सत्कार का धर्म उन्हें ले आये।

जो भी हो, बकुल को प्रतीक्षा करनी थी और प्रतीक्षा में जागते रहना भी था। जागता रहा था वह। विशेष कक्ष में बैठा हुआ पल-पल चौकन्ना रहा था वह। न जाने किस क्षण महाराज उपस्थित हों; न जाने कब, किस पल उनका सन्देश आ पहुंचे।

अर्धरात्रि बीतते-न-बीतते समाचार मिल गया था उसे। सन्देशवाहक ने सूचना दी थी—"महाराज ने पुछवाया है, कहीं कुछ आवश्यकता तो नहीं है आप लोगों को?"

"क्या मथुराधिपति से भेंट···?" बकुल बोला था; पर सन्देशवाहक सैनिक ने बात काट दी। कहा—"जानता हूं दूत! आप उनके लिए प्रतीक्षित हैं; पर महाराज आज बहुत क्लांत हैं। किसी विशिष्ट राजकार्य से

बाहर गये थे। लौटते समय देर हो गयी। अतः रात्रि को आपको कष्ट देना उचित नहीं समझते। कहा है, यदि विशेष कार्य न हो, तो कल सभा में भेंट कर लें।"

"जैसी उनकी इच्छा!" बकुल ने उत्साहित होकर कहा था। वह स्वयं भी बहुत थका हुआ था, प्रसन्न हुआ—"कल राजसभा में ही उपस्थित हो जायेंगे हम। महाराज को विश्राम करने दो।"

अभिवादन करके सन्देशवाहक लौट पड़ा। बकुल ने उबासी ली और शयन-गृह की ओर चला। बिछौने पर लेटते ही पलकें लग गयीं उसकी।

किन्तु महाराज कंस की पलकें नहीं लगी थीं। रह-रहकर अपनी मोटी कठोर हथेलियों को देखने लगते। गला सूख जाता था उनका। जिस क्षण उस सद्योजात कोमल शिशु को हत किया, उस क्षण जैसे बुद्धिरिक्त कर लिया था अपने-आप को। दृष्टि में सब कुछ था, किन्तु सब अलोप। अन्धेरी रात्रि की तरह काला।

वे भी तो यही कुछ अनुभव कर रहे होंगे? वे यानी देवकी और वसु-देव। उनके अनुभव तो कुछ और अधिक कष्टकर होंगे। कैसे, कितने! यह अनुमान मथुराधिपति नहीं कर सकेंगे। वे केवल एक वधिक के भाव का अनुमान कर पा रहे हैं। वह अनुमान कैसे कर सकते हैं, जो वध के दर्शकों ने झेला होगा? उससे भी कहीं अधिक गहराई के साथ! वसुदेव-देवकी ने उस बालक के वध को साधारण वध की तरह तो झेला नहीं होगा? उन्होंने अपने-आप का वध झेला होगा।

कंस न चाहकर भी छार-छार हो उठे हैं। विभाजित। अपना ही चेहरा नहीं पहचान पा रहे हैं। अपना-आप समझ पाना भी उनके वश में नहीं रहा। लगता है कि वह स्वयं ही नहीं रहे हैं। रह गया है, केवल यम! मृत्युवाहक! जिसका न कोई चेहरा होता है, न नाम, केवल एक अन्ध-कार!

और अन्धकार को अन्धकार भला कैसे देख सकता है? कंस की

फिर यह स्वर शान्त हो गया।

सन्नाटा बिखरा हुआ था सभी ओर। रात्रि को और अधिक गहरी काली रात्रि में बदलता हुआ, फिर हलकी आहट हुई। वसुहोम ने देखा, चंचला बाहर आ रही है। मन घोर वितृष्णा से भर उठा था उसका। नारी होकर भी मातृत्व के प्रति ऐसी क्रूरता। क्या वह नही जानती थी कि देवकी को लेकर गुप्त सूचनाएं एकत्र करते रहने का अर्थ था, नारीत्व के एक सहज स्वाभाविक अधिकार को हत करना।

पर वसुहोम कुछ अकचका-सा गया। लगा था कि चंचला की आंखों में कुछ रिसन है या वसुहोम को ही धोखा हुआ है? कैसी कठोर, पाषाण हृदय स्त्री के मन मे शिशु के प्रति ममता उभर सकती है। सहसा विश्वसनीय नही लगा था उसे।

किन्तु उस समय चौक गया, जब उसने पाया था कि चंचला अनायास ही दृष्टि बचाकर कुछ भागती हुई-सी एक ओर चली गयी। उसकी असहजता देखकर एक ओर बैठा कटक उसके पीछे लपक पड़ा। वसुहोम कुछ पल खाली दिशा मे देखता रहा, जिधर वे दोनों चले गये थे, फिर उठा और दबी चाल मे उसी ओर चल पड़ा।



वे विशाल प्रकोष्ठ के एक कोने में खड़े हुए थे। चंचला पति की ओर से पीठ मोड़े हुए। सम्भवत: आंचल का छोर भी उसने मुंह में दे रखा था।

वसुहोम एक ओर थमा रह गया। आश्चर्य और विश्वास से उन्हें देखता हुआ।

कटक पूछ रहा था, "क्या हुआ तुम्हे?"

वह चुप थी।

"कुछ बोलो तो?" कंटक ने उसे पुनः कुरेदा।

"कुछ नही।" वह बोली। वसुहोम चकित हुआ। चचला की आवाज स्वाभाविक तो लग नही रही है; पर क्यो?

"फिर तुम इतनी असहज क्यो हो रही हो?" वसुहोम ने सुना, कंटक कह रहा था।

"ऐसे ही।" उसने कहा। ऐसे जैसे देर तक फेफड़ों में भरा रहा श्वास उछाला हो।

"किन्तु देवी!" कंटक ने उसी कटु स्वर मे कहा था—"यह तो प्रसन्नता

की बात है कि महाराज कंस का काल जनमा है और शीघ्र ही नष्ट भी हो जायेगा।"

अनायास वसुहोम को लगा था कि वह बिजली की तरह कौंधकर मुड़ी है। पति की ओर घृणापूर्वक देखते हुए उसने कह भी दिया था—"तुम्हे जन्म नही मृत्यु देखकर सुख मिलता है, देव ! आश्चर्य, कैसी विचित्र पाशविक मनोवृत्ति है यह !"

"यह क्या बक रही हो तुम ?" कंटक का स्वर सहसा कडवा हो उठा था। क्रोध से उसने पत्नी की दोनो बांहें पकड़कर उसे झकझोर डाला—"तुम सहज तो हो ? कही देवकी के पुत्र ने तुम पर कोई मन्त्र तो नही किया ?"

चंचला की दृष्टि में घृणा उसी तरह कायम रही। उसने कहा था, "स्त्री के लिए सन्तान मन्त्रवत प्रभावी होती है स्वामी ! और यह विस्मृत मत कीजिये कि मैं भी स्त्री हूं। गर्भधारण का कष्ट, सुख, आनन्द और तृप्ति का भाव मुझमे भी उसी तरह है, जैसे देवकी मे है। जन्म का सुख भी मैं समझती हू और मृत्यु की पीड़ा भी ! विशेषकर सन्तति की मृत्युपीडा !"

कंटक के पजों की जकड़ सहसा ढीली हो गयी। वसुहोम चकित ! चकित से कही अधिक प्रसन्न। चलो, चंचला के भीतर जागा मातृत्व मे ही कही देवकी-वसुदेव का शुभ हो ?

चचला ने भर्राये स्वर में कहा था—"मुझे निवास पर जाने की आज्ञा दें। जो कुछ होगा, वह मैं देख नही सकूंगी।" और इसके पूर्व कि कंटक कुछ कहे अथवा कर सके, वह तीव्रगति से एक ओर चली गयी थी। स्तब्ध खड़ा रह गया था कंटक…!

वसुहोम ने गहरा श्वास लिया। लौटकर अपने स्थान की ओर चल पड़ा। महाराज कस तक सन्देशवाहक सूचना पहुंचा आया था; किन्तु वह नही आए थे ! "आयेंगे", केवल यही कहा था उन्होने। वसुहोम प्रतीक्षा करता रहा था उनकी। वसुदेव और कंटक भी।

रात पूर्ववत् रेंगती जा रही थी। कंटक पूर्वापेक्षा जड़-सा होने लगा था।

□

थोड़ी देर बाद अनुराधा पुनः प्रसूति-गृह से बाहर आयी थी। चेहरे पर सन्नाटा लिपा हुआ था उसके। सूचना दी थी—"देवकीसुत अब प्रसन्न

हैं। आप चाहें, तो उनके दर्शन करें!"

सूचना वसुहोम के लिए थी या वसुदेव के लिए? निश्चय ही वसुदेव से कहा था उसने। वसुदेव ने सुना। खाली आंखों से अनुराधा की ओर देखा फिर चुपचाप चल पड़े प्रसूतिगृह की ओर।

देवकी के पास ही लेटा था शिशु, विशाल कारागार का अन्धेरा था सब ओर। प्रकाश के नाम पर थोड़ी-सी किरनों की व्यवस्था की गयी थी। उन किरणों में ही देवकी का पहला पुत्र किसी तारे की तरह चमचमा रहा था। पलकें बन्द थी उसकी। शरीर हलके-हलके थरथराता हुआ।

वसुदेव भावहीन उसे देखे जा रहे थे। दृष्टि परिधि में पत्नी भी थीं; पर उस क्षण वह शान्त थी, जैसे गहरी निद्रा में हों।

वसुदेव ने साहस संजोया, आगे बढ़े। स्पर्श के लिए हौले से हाथ आगे बढ़ाया था उन्होंने; पर न जाने क्या हुआ, हाथ एक सीमा तक बढ़कर ही थम गया। दृष्टि में अनायास ही पत्नी की कनपटियों पर रिसते अश्रु-कण आ गये और लगा कि उनकी अपनी आंखों के सामने धुंधलाहट बिखर गयी है!

थूक का घूंट निगलकर हाथ पीछे खींच लिया उन्होंने। धीमे, बहुत धीमे, ऐसे जैसे गुनगुनाये हों, बोल पड़े थे वह—'देवकी!"

देवकी ने हौले से पलकें खोलीं। आंसू तिर रहे थे पुतलियों पर। सम्भवतः ये आंसू ही उत्तर हैं, यही प्रश्न। वे चुपचाप एक-दूसरे को देखते हुए स्तब्ध से लेटे-बैठे रहे।

देर बाद वसुदेव जैसे साहस संजो सके थे। आगे बढ़कर शिशु से पहले पत्नी के माथे पर हाथ रख दिया, बोले—"तुम्हारी पीड़ा जानता हूं, देवी! किन्तु कालगति के आगे किसी की नहीं चलती। विधि-विधान ईश्वर निर्मित हैं। मनुष्य केवल उनका वाहक, उनका सेवक।"

देवकी ने उत्तर नहीं दिया। सिसक पड़ी, फिर सिसकती ही रही।

वसुदेव तरह-तरह से आश्वासन देते रहे थे उन्हें—"धैर्य से काम लो देवी! मथुराधिपति यदि इस अबोध के प्रति निर्मम होंगे, तो निश्चय जानो, विधाता उन्हें दण्ड अवश्य देगा। वह सर्वज्ञ है, सबका संचालक है, सबका सूत्रधार! उसका दिया सुख और उसका दिया दुःख, सभी कुछ अजाना है, रहस्यमय है!"

पर देवकी की ओर से कोई उत्तर नहीं। बस, सिसकियां और धीमे-

धीमे थकती जाती सिसकियां ही उनका उत्तर। बहुत कुछ, बहुत तरह यही सब कहते रहे थे वसुदेव। अन्त में लगा था कि स्वयं भी थकने लगे हैं। स्वर लड़खड़ाने लगा था उनक । दृष्टि में बार-बार शिशु आ रह' था या कि दृष्टि ही बार-बार कोमल शिशु पर जा रही थी ?

अनुभव हुआ था कि वह भी सिसकने को हो आये हैं। मुंह मोड़कर दूसरी दिशा की ओर देखना चाहा था उन्होंने। यह शिशु और वेदनामयी पत्नी न देखें, तो सम्भव है स्वर नियन्त्रित रहे, सिसकियां थमें; पर विचित्र स्थिति ! न गरदन मोड़ पा रहे हैं, न ही दृष्टि हटाना उनके वश मे रह गया है। बस, लगातार शिशु को देखे जा रहे हैं। मन करता है कि दृष्टि मे सदा-सदा के लिए उसे समेट लें। पुतलियों के भीतर एक गोद जनम आये और उसमे समा जाये यह शिशु।

मकपकाकर उठ पड़े थे वह। कठोरता से काम लेना होगा उन्हें। शिला-वत् कठोरता; पर वह कठोरता कहां से लायें? मन के किसी कोने मे तो रेत का अंश भी नही बचा है। सब कुछ तो केवल रिसन बन गया है, जलवत्! केवल तरल ! इस तरल को किस शक्ति से बटोकर, किस संयम से सहेज-कर शिला में बदल सकेंगे ?

असम्भव है ! मन ने निर्णय दे दिया था। विचारशून्य हो गये।

देवकी उसी तरह हिचकियां भर रही थीं। अब इतना और हो गया था कि देवकी ने एक हाथ को कपोल के पास अपनी हथेली से दबा लिया था। लगता था कि वज्र शिला के नीचे दब गयी है वसुदेव की हथेली। देवकी का कोमल स्पर्श उस शिला की तरह ही भारी अनुभव हुआ था उन्हें। हथेली हटा पाना भी वश मे नहीं।

और स्वर? पता नही कहा गुम गया है ? शब्द ? सोच से परे। न जाने किस लोक मे, अदृश्य ! ऐसे जैसे कभी उनसे वसुदेव की पहचान ही नहीं रही है।

रात गहरी और गहरी होती हुई। वसुदेव चुपचाप शान्त बैठे रहे। सन्नाटे को तोडते हुए किसी स्वर, किसी आहट से बेखबर। वह केवल सुन पा रहे थे *कोमल शिशु का धीमे-धीमे हाथ-पैर हिलाना। वे नन्हे-नन्हे हाथ-पैर !* वसुदेव गहरे, खूब गहरे तरल जल मे डूबते हुए और डुबकियों की आवाज बन गयी है थम-थमकर उठने वाली देवकी की सिसकी।

अब नही उबर सकेंगे इस अतल जल से ! वही क्यों, सभवत: देवकी भी

नही उबर सकेंगी। अब तो कोई उबारे तो उबार ले। उनके अपने वश मे कुछ भी नही है। इस समय किसी के वश में कुछ नही है। जिसके वश में है, वह अपने से ही अवश हो गया है।



रथ कारागार के मुख्य द्वार पर थमा, वे उतरे। उतरते समय पैर कांपे थे उनके; पर लगा था कि इस कम्पन को सम्भालना भी उनके वश में नही है, उनका आगे और आगे बढ़ते जाना भी और उससे भी आगे द्वार तक पहुंचकर यह कह देना भी उनसे अवश ही हुआ था—"द्वार खोलो !"

द्वार खुल रहा है ! द्वार की घोर गर्जन करती आहट भी उभर रही है; पर आश्चर्य ! यह आहट सुनायी नही पड रही है महाराज कंस को। वह सुन रहे हैं अपने भीतर किसी अदृश्य का आदेश। आगे बढ़ो, मथुराधिपति ! तुम्हारी मृत्यु अभी तुम्हारे वश मे है; पर मैं किसके वश मे हू ? पूछना भी चाहा है उन्होने; पर पूछ नही सके। केवल आगे बढ गये हैं।

भयभीत बहन-बहनोई सामने हैं। शक्तिहीन देवकी जैसे-तैसे उठने की चेष्टा कर रही हैं; किन्तु उठ नही पा रही। वह कांप भी रही हैं, रो भी रही हैं; पर रुदन सुनायी नही पड रहा है मथुराधिपति को।

एक ओर निवेदन करते हुए वसुदेव खड़े है। बहुत थर्राता, कांपता, निवेदन—"महाराज! यह अबोध बालक किसी को क्या क्षति पहुचा सकता है ?"

पर सुना नही है उन्होने। भयभीत दृष्टि बालक को इस तरह देख रही है, जैसे वह असंख्य चमचमाती तलवारो का समूह हो। दृष्टि जिस पर ठहर नही पाती। सहसा वे तलवारें प्रहार मुद्रा मे उठती हुई-सी लगती हैं। वे कंस की ओर आ रही हैं। बस, वे कंस को आहत कर देंगी, समाप्त !

सूचना गूंज रही है कानों मे—"वसुदेव-देवकी की सन्तान ही तुम्हारा काल होगी कंस !"

काल ! काल ! काल ! कंस न कुछ सुन पा रहे हैं, न देख पा रहे हैं, सिर्फ अन्धकार बिखर गया है उनकी आंखों से लेकर मस्तिष्क में।

हाथ यान्त्रिक ढंग से बढते हैं बालक की ओर। देवकी चीखकर भाई के पैरो पर गिर पड़ी हैं। सिर पीटा है उन्होने—"इसे छोड़ दो भइया···! यह अबोध तुम्हारे लिए क्या भय है ? इसे छोड़ दो ! यह तुम्हारा ही रक्तांश है पुत्र ! [illegible] !"

'महाराज !' वसुदेव गिड़गिड़ा रहे हैं।

किन्तु कंस के लिए न सुन पाना शेष रहा है, न देख पाना। वह मनुष्य भी कहां रहे हैं, केवल भय रह गये हैं ! आकार-प्रकार, व्यक्तित्व-विचार से शून्य, केवल भय।

सहसा धरती पर कोमल बालक को एक ओर रखकर उन्होंने तलवार खींच ली है !

'भईया !' देवकी अन्तिम बार चीखी है। कंस की तलवार पर किरनें कौंधी हैं। इन कौंधों ने दृष्टि चौंधिया दी है वसुदेव की। सिसकते रह गये हैं और कंस का हाथ तीव्र गति से नीचे जाकर निर्दोष. कोमल बालक को दो टुकड़ो मे विभाजित कर दिया गया है। रक्तरंजित खंग लिए वह कारा-गृह के बाहर चले गये है।

देवकी बेसुध हो चुकी है। कोई नही आया कक्ष में। कैसे आ सकता है ? न वसुहोम, न कटक। वे केवल बाहर खड़े थरथराते रहे है। हर चीख रोमांचित करती गयी है उन्हें। किस तरह अपने आपको सुधि मे सहेजे रख सके हैं, नही जानते।

"द्वार बन्द कर दो !" वज्र की तरह कंस के शब्द बरसे है उन पर और यांत्रिक भाव से वसुहोम और कंटक ने मिलकर द्वार बन्द कर दिये !

महाराज कंस ने किसी के साथ आने की प्रतीक्षा नहीं की है। रक्त-रंजित खंग लिए हुए वह तीव्रगति से कारागार के बाहर निकल गये हैं। ऐसे जैसे भयातुर भागे जा रहे हों ! इतने कायर तो नही हैं वह ?

पर वह वीर भी कहां हैं। उन्होंने रथ मे लगभग बेसुधी के साथ स्वयं को रख दिया है। इसी तरह, जैसे किसी अदृश्य शक्ति से ढो लाये हैं अपने आपको।

रथ पुनः दौड़ पड़ा है मथुरा के राजपथ पर। आश्चर्य ! रथ की गड़-गड़ाहट नही सुन पा रहे है कंस। वह सुन रहे है अपना हांफा। तेज और तेज होता जाता हाफना।

कंस अन्धेरे में भी जागते रहे थे। सम्पूर्ण रात्रि जागते रहे। कितनी

बार हथेलियां मसली, कितनी बार करवटें बदलीं और कितनी बार शैया से उठकर शयन-कक्ष में टहले, यह भी स्मरण नहीं !

बस, जागना स्मरण है। पलकें बहुत बार मूंदी थी। थकान भी अनुभव की थी शरीर में; पर नींद नहीं। बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं आयी।

रात इसी तरह बीत गयी थी। उत्तेजना सुबह भी थी। जैसे-जैसे सूर्य चढ़ा, अधिक तीव्र हुई थी उत्तेजना; किन्तु जाने कहां से अनोखी शक्ति जुटा ली थी उन्होंने। काबू किये रहे।

मृत्युभय से एक बार तो मुक्ति पा ली थी उन्होंने; पर क्या सचमुच सदा के लिए मुक्ति पा ली है ? मन बार-बार पूछ उठता।

उत्तर नहीं है उनके पास। कभी होगा भी नहीं। बस, इसी तरह देवकी वसुदेव की हर सन्तान को समाप्त करते जाना होगा। मुक्ति का भाव अवश्य आयेगा मन में; पर मृत्यु भय नहीं छंटेगा। याद आता है, आखेट करते हुए एक बार एक ऋषि से भेंट हो गयी थी। ज्ञात हुआ था, बहुत बड़े तपस्वी हैं। अनायास ही कंस, तबके युवराज कंस प्रश्न कर बैठे थे उनसे—"ब्रह्मन् ! क्या मृत्यु से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ?"

वृद्ध तपस्वी मुसकराये थे, फिर शान्त स्वर में उत्तर दिया था—"नहीं राजन् ! यह असम्भव है। मुक्ति जन्म से अवश्य प्राप्त की जा सकती है, मृत्यु से नहीं।"

तर्कातर्क कर उठे थे युवराज—"ऐसा क्यों ब्राह्मण देवता ! जब मनुष्य जन्म से मुक्ति पा सकता है, तब मृत्यु से क्यों नहीं पा सकता ?"

"इसलिए युवराज, क्योंकि मुक्ति असत्य से प्राप्त की जाती है, सत्य से नहीं।" तपस्वी ने उत्तर दिया था--"सत्य से अब तक कोई भी मुक्त नहीं हो सका है।"

कंस को लगा था कि वृद्ध तपस्वी से व्यर्थ ही माथापच्ची करेंगे। तर्कातर्क में उलझकर अपने आपको उलझाना उन्हें कभी रुचिकर नहीं लगा। विदा ले ली थी उनसे !

पर आज उसी तपस्वी के शब्द पुनः स्मरण हो आये हैं। लगता है कि वृद्ध ब्राह्मण पास ही खड़े हुए हैं। श्वेत धवल दाढ़ी और तपस्या के कारण जर्जर शरीर; किन्तु तेजस्वी मुखमंडल। धीमे से कहते हैं—"मैंने कहा था ना कंस ! सत्य से मुक्ति कभी नहीं होती !"



प्रात: जलपान करते समय ही सोच में पड़ गये थे कंस। सच ही तो, मृत्यु को केवल टाल दिया है उन्होंने; किन्तु मुक्त कहां हो पाये ? उस शिशु को जन्ममुक्त करके भी स्वयं मृत्युमुक्त नहीं हो सके।

पर लगा था कि व्यर्थ ही सिर खपा रहे हैं। यह सब सोचना निरर्थक है। कम-से-कम मथुराधिपति कंस के लिए व्यर्थ ! बस, इतना निश्चित कर लेना ही श्रेष्ठ हुआ कि वह आगत भय से कुछ ही समय के लिए क्यों न हो; पर मुक्त हो गये हैं ! जन्म-मृत्यु और मुक्ति-अमुक्ति यह सब उनका विचार विषय नहीं। राजाओं के लिए यह सब विचारना शोभा भी नहीं देता।

उठे। याद आ गया था कि मगधराज जरासन्ध के दूत से भेंट करनी है। आलस्य के कारण राजसभा में जाने की इच्छा नहीं हो रही थी, किन्तु जाना पड़ा। मगधराज के दूत को दिया समय टालना उचित नहीं।

राजसभा में पहुंचे। कारागृह में गयी रात क्या कुछ घटा है, उस समय तक सभी के लिए अनजाना था। सब रहस्यमय ! आसन ग्रहण करते ही दूत को उपस्थित होने की आज्ञा दी थी।

वे उपस्थित हुए। दूत वकुल और राजपुरोहित। कुछ अन्य सेवक भी साथ थे उनके। मगधराज ने मथुराधिपति को अपनी ओर से भेंटें भिजवायी थीं।

दूत ने प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर मथुराधिपति को अभिवादन किया, फिर कहा था—"महाराज की जय हो ! मगधराज जरासन्ध ने मुझे विशेष सन्देश देकर पठाया है। उनकी हार्दिक इच्छा है कि मगध और मथुरा की मैत्री पारिवारिक सम्बन्ध में बदल जाये। यह सम्बन्ध मथुरा और मगध दोनों ही राज्यों की प्रजा के लिए शुभकर होगा। सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व रहेगा, फिर मगधराज का विश्वास है कि आप जैसा सुयोग्य, पराक्रमी और वीरपुरुष उनका जामाता बनने के योग्य है। हमें विश्वास है कि मथुराधिपति इस प्रस्ताव को स्नेहादर देंगे।"

कंस ही नहीं, उपस्थित सभाजनों में खुसरपुसर फैल गयी। सचमुच मगधराज जरासन्ध का प्रस्ताव मथुरा के लिए ही नहीं, शूरसेन जनपद के लिए भी परम सम्मान की बात थी। भरत खण्ड के अत्यधिक प्रभावी राजकुल से मथुराधिपति कंस का सम्बन्ध बने, निस्सन्देह यह सौभाग्य और सम्मान का विषय था।

एक पल के लिए सभी शान्त रहे थे। महाराज कंस ने क्रमशः प्रद्युम्न केशी और अन्य जनपद प्रमुखों की ओर देखा था, फिर सभी की दृष्टि में सहमति पाकर कहा था—"दूत ! हम मगधराज महाराज जरासन्ध के प्रति आभारी हैं। निस्सन्देह उन्होंने मथुरा और सम्पूर्ण यादव गणसंघ को इस प्रस्ताव से अभूतपूर्व सम्मान दिया है। हमें उनका कृपापूर्ण प्रस्ताव स्वीकार है। बृहद्रथ सुत जरासन्ध सम्मानित राजपुरुष हैं। उनके कुल से सम्बन्ध जोड़कर मथुरा सम्मानित होगी।"

उपस्थित सभाजनों ने जय-जयकार किया। मथुराधिपति कंस सारा सन्ताप भूल बैठे थे कुछ पलों के लिए। राजपुरोहित आगे बढ़ आये।

दूत बकुल ने कहा—"तब तिलक स्वीकार करें, राजन् !"

राजपुरोहित आगे बढ़े। उनके पीछे-पीछे बढ़े मथुरा के विशेष सेवक-सेविकाएं। वे सभी नये, पवित्र वस्त्रों में सुसज्जित, प्रसन्नमन दीख रहे थे। हाथों में मंगल कलश और थाल थे। इन थालों में पूजा रोली का सामान।

राजपुरोहित ने ससम्मान मथुराधिपति को जामाता के रूप में जरासन्ध की ओर से सम्मानित करके पूजा की थी, फिर जय-जयकारों और हर्ष-ध्वनियों के बीच अपना आसन ग्रहण किया।

प्रसन्नमन प्रद्युम्न अपने आसन से उठे। हर्षित स्वर में घोषणा की थी उन्होंने—"महाराज कंस और मगधराज के बीच बना यह सम्बन्ध मथुरा और मगध के लिए शुभ हो !" इसके बाद राज्यादेश प्रसारित किये गये—"मथुरा में उल्लास मनाया जाये। सम्पूर्ण प्रजाजनों तक सुखानन्द का यह समाचार पहुंचाया जाये। नगर-ग्रामों में घोषणा की जाये, मगध और मथुरा पारिवारिक सम्बन्ध में जुड़े।"

एक बार पुनः जय-जयकार हुआ, फिर सम्पूर्ण नगर तक सूचनाएं पहुंचाने मथुराधिपति के विश्वस्त सेवक दौड़ पड़े। आनंद और सुख के साथ-साथ गहन सन्तोष बटोरे हुए मथुराधिपति महाराज कंस ने सभा विसर्जित की।

राजाज्ञा हुई कि समूचे नगर को सजाया जाए। विभिन्न वाद्य-यंत्रों के साथ समारोह आयोजित हों, और उस समारोह में मगध के राजपुरोहित तथा दूत बकुल सम्मानित किये जाएं। कुछ समय बाद ही समूचे नगर में रंग-गुलाल का वातावरण बिखर गया।

□

वसुहोम ने रात्रि को ही आज्ञा दी थी—"बालक के शव की यथोचित सम्मान सहित अन्तिम क्रिया की जाए।"

सेवक तत्पर हुए। काम आ पड़ा था कंटक के सिर। कारागार के अधीक्षक का आदेश उसी के लिए था। कुछ हिचक और बेबसी के साथ कंटक ने साथियों सहित पुनः देवकी-वसुदेव के कारागार में प्रवेश किया था। देवकी एक ओर शिलावत बैठी थी। वधित बालक के शव की ओर से पीठ किये हुए। अब न सिसकियां थी, न बेसुधी। लगता था कि पत्थर की एक मूर्ति दूसरी ओर मुह किये हुए स्थापित कर दी गयी है। एकमात्र वसुदेव ही थे, जो खड़े-खड़े वह दृश्य देखते रहे थे; किन्तु प्रतिक्रियाहीन।

कंटक ने बहुत चाहा था कि दृष्टि उठाकर उन्हें देखें, किन्तु साहस नही हुआ था कि आत्मा ने ही दबोच लिया उसकी इच्छा को। उलटे एक धिक्कार उठ आया था मन मे—छि: ! इस घिनौने कांड का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उस पर भी तो है ? जैसे-तैसे थूक का घूंट निगलकर वह खड़ा रहा था।

सेवकों ने बिखरा हुआ रक्त झाड़-पोंछकर साफ किया, फिर शव के विभाजित हिस्सों को बटोरा और बाहर ले चले। पीछे-पीछे कंटक इस भाव से लपका, जैसे कोई प्रेतात्मा उसका पीछा कर रही हो और वह थर्राता-कांपता भाग रहा हो !

बाहर आकर पसीने से लथपथ थोड़ी देर बैठा रह गया था वह। सेवक बालक के शव को कपड़ों के एक ढेर में बटोरे हुए अगली आज्ञा के लिए तत्पर खड़े रहे। उनके चेहरों पर भी पीड़ा, घृणा और विकृति बिखरी हुई थी। उससे कहीं अधिक बिखरा था गहन असन्तोष ! धिक्कार है ! किस घृणित कर्म के लिए उन्हे सेवा आज्ञा दी गयी है !

न वसुहोम अपने भवन से बाहर आया, न अनुराधा, चंचला भी नहीं।

कंटक कुछ देर बाद जैसे-तैसे स्वयं को सहेजता-संभालता हुआ उठा और फिर सेवकों को साथ लिए हुए यमुना तट की ओर चल पड़ा। बालक को पवित्र कालिन्दी की लहरों को सौंपते समय बदन में पुनः थरथराहट भर गयी थी। लग रहा था कि यमुना भी जैसे उसकी आत्मा पर मार रही है। उसे धिक्कारती हुई, कोसती हुई !

लहरों मे उफान था। यह उफान कालिन्दी क्रोध का

दिन यह उफान कंटक ही नहीं, महाराज कंस के समूचे

निगल लेगा। प्रकृति की इस महाशक्ति का प्रकोप किस दिन क्या करे, कौन जाने !

क्या होगा उस दिन ? विशाल इमारतें ढह जाएंगी। असंख्य स्त्री-पुरुष बालक इन लहरों की तलवारों जैसी असंख्य नोंकों से इसी तरह दो हिस्सों में बंट जायेंगे, जिस तरह सरलमना देवकी के पुत्र का कंस ने वध किया है। क्रूरता से पूर्ण कर्म का परिणाम निश्चित है।

फिर कठिनाई से सहेजा था अपने आपको। लहरों की ओर अनदेखा करते हुए आदेश दिया था—"देवकीसुत का शव माता यमुना को सौंप दो।"

कहकर उस ओर देखने का साहस नहीं हुआ था। पीठ मोड़कर खड़ा रहा छपाक् की ध्वनि ने अहसास कराया था कि शिशु यमुना ने अपने आंचल में ले लिया है। सेवक लौट पड़े थे। सब खिन्नमन। सब उखड़े हुए। सब कोलाहल से जूझता हुआ चुप अपने भीतर समेटे !

रात्रि का तीसरा पहर प्रारंभ हुए कंटक ने निवास में प्रवेश किया। दिन भर की तरह ही दिनचर्या बीती थी; किन्तु लगा कि थकान ने नस-नस झकझोर डाली है। माथा सहज नहीं। मन भी असहज। शैया पर पहुंचे, इसके पहले ही दृष्टि गयी थी चंचला पर ! वह पास की शैया पर लेटी हुई भयभीत-सी पति को देख रही थी ! ऐसे जैसे मृत हो गयी हो। कितना ठहराव था उसकी पुतलियों में ! कंटक भय से सिहर उठा।

चंचला ने कहा था—"जानती हूं सब समाप्त हुआ !"

"हां !" कंटक ने कहा। ऐसे जैसे कराहा हो। शैया पर लेट रहा। दृष्टि न चाहते हुए भी घबराई हुई-सी उसी तरह छत पर जा ठहरी, जैसे पत्नी की ठहरी हुई थी।

एक चुप उनके बीच बिखर गया। किन्तु विचित्र था वह चुप ! लग रहा था कि लहरों का शोर बढ़ता जा रहा है। बढ़ता जा रहा है। राक्षसी कोलाहल की तरह डराने लगा है।

□

वे एक-दूसरे की ओर मुड़े। भयभीत-भाव से देखने लगे। उन्होंने थूक के घूंट निगले। बोलने का प्रयत्न किया, किन्तु अनुभव हुआ, जैसे किसी चीज ने उनके अपने-अपने गले बन्द कर दिए हैं।

सहसा चंचला बुदबुदायी थी, बहुत धीमा स्वर—"सुन्दर बालक था !"

"हां, होगा !"

"क्यों ? क्या तुमने उसे देखा नहीं ?" चंचला ने विस्मय; किन्तु घृणा के साथ प्रश्न किया। लगा था कि उसके अपने शब्दों में पति के प्रति घोर वितृष्णा उभर आयी है; पर फिर अनुभव हुआ, जैसे इस वितृष्णा को वश में रखना संभव भी नहीं था उसके लिए। पति के लिए यही योग्य !

वह उसी तरह छत को देखता रहा—"अवसर ही नहीं मिला और जब मिला, तब देखने का साहस न था।" कंटक ने गहरा श्वांस लिया, जैसे अपने आप को ही डसा हो। एक फुंफकार के साथ। विषाक्त फुंफकार ! कितनी विचित्र स्थिति है यह ! अपना आप ही अपने को नागभाव से डसने लगा है।

"बहुत बड़ा अपराध हुआ हमसे।" चंचला ने कहा।

"नहीं।" कंटक बड़बड़ाया—"अपराध नहीं, पाप।"

वह चुप हो रही। अविश्वास से पति की ओर देखती हुई। क्या वह ठीक ही कह रहा है ? विश्वास नहीं हुआ था। जीवन भर असत्य और अपराध की राह पर चलनेवाला उसका पति पाप-पुण्य की पहचान कर रहा है। कुछ अस्वाभाविक लगा; पर वह कालिख पुता चेहरा ! चेहरे से स्वर तक बिखरा हुआ खंड-खंड व्यक्तित्व ! वह सब तो परम् विश्वसनीय अनुभव हुआ था उसे।

कंटक पुनः बोलने लगा था—"मैं नहीं जानता था कि महाराज सच-मुच इस सीमा तक जा सकते हैं।"

"क्यों नहीं जानते थे ?"

"विश्वास नहीं होता था।" कंटक ने उत्तर दिया—"लगता था कि वह देवकी-वसुदेव को केवल धमकियां देना चाहते हैं, उन्हें भयभीत करना चाहते हैं; किन्तु···।" थम गया था कंटक। कंटक थम गया था या कि शब्द ही थम गये थे ?

चंचला के पास भी शब्द नहीं थे।

चुप पुनः ठहर गया उनके बीच। ऐसे जैसे एक मरुथल बिखरा हुआ हो और असीम मरुथल के दो अदृश्य सीमाहीन क्षेत्रों में वे अलग-थलग खड़े हों।

फिर कब तक इसी तरह मरुथल के दो किनारों पर वे खड़े रहे थे, स्वयं ही ज्ञात नहीं हुआ था उन्हें। जब ज्ञात हुआ, तब भोर हो चुकी थी।



भोर ने भी सहज नहीं किया था उन्हें। कारागृह अधीक्षक का सेवक सन्देश लाया था, "नायक वसुहोम स्मरण कर रहे हैं प्रभु !"

कंटक ने सुना, चंचला ने भी। एक-दूसरे को देखा, फिर जैसे अपने भीतर से कंटक ने शब्द धकेलते हुए कहा था—"उपस्थित होता हूं।"

वह भी सोच रहा था कि क्या कहेंगे वसुहोम। और पत्नी भी पूछना चाहती थी ? किन्तु शब्द पुनः विस्मृत हो गये। जल्दी-जल्दी तैयार होकर वसुहोम निवास की ओर चल पड़ा था कंटक।

वसुहोम भी विचित्र से तनाव में भरे हुए थे। कुछ सीमा तक खीझे हुए भी। कंटक ने अभिवादन करके जब उन्हें अपने आ पहुंचने की सूचना दी, तब उस ओर ध्यान गया था उनका। कहा था—"महाराजधिराज कंस का विवाह सम्बन्ध मगधराज की कन्याओं से तय हुआ है। अभी-अभी राजाज्ञा आयी है कि कारागार में भी उत्सव मनाया जाये।"

कंटक का मन हुआ, चीख पड़े— "नहीं, यह असंभव है। किसी और को इस सब आयोजन का आदेश दे दें आप; किन्तु मेरे लिए असंभव है ! "पर कहा नहीं। कहना संभव न होगा। राज्यादेश का निर्वाह करना अनुशासन भी है, धर्म भी। बिना कुछ कहे बोले, सिर झुका दिया था।

वसुहोम ने आदेश दिया—"उत्सव किस तरह आयोजित होगा या किस तरह होना चाहिए, यह तुम पर ही छोड़ता हूं उपाधीक्षक ! तुमसे अधिक सुन्दर आनंदोत्सव का आयोजन कौन कर सकेगा भला ?"

कंटक को लगा कि वसुहोम ने गाली दी है उसे ! चेहरा धुंधला गया। होंठ भींचकर गरदन झुका ली उसने। लगता था कि शिशु के कोमल अंगों पर हुआ मथुराधिपति का वह क्रूर प्रहार कंटक और कंटक जैसे पापियों की अन्तरात्मा पर भी हुआ है। उन सब पर, जो ऐसे क्रूर-कर्म में माध्यम बने हैं। वसुहोम के शब्दों में ही क्यों, उन्हें संभवतः अपने आत्मानुभवों में भी इसी तरह की गालियां सहते-झेलते रहना होगा। इनसे आजन्म मुक्ति संभव नहीं !

अनजाने ही केशी पर क्रोध आने लगा था। क्रोध या घृणा ? घृणा कहना अधिक उपयुक्त होगा। हां, घृणा ही हुई थी उसे। उसी नीच ने तो कंटक को यह दायित्व सौंपा था। सहस्र मुद्राएं दी थीं। कहा था—"तुम पर स्वयं से अधिक विश्वास करता हूं, कंटक ! इसी कारण तुम्हें वहां पठा रहा

हूं। देवकी-वसुदेव के पास वसुहोम संयोगवश ही महाराज का विश्वास लेकर पहुंच गया है। निश्चय ही वह महाराज का कुछ अशुभ करेगा। देवकी-वसुदेव का शुभ। वैसे न हो पाये, इसके लिए तुम्हें नियुक्त कर रहा हूं!"

एक सहस्र मुद्राएं!

□

केशी ने एक झटके से मुद्राओं की थैली कटक की ओर उछाल दी थी। क्रूरतापूर्ण पर धूर्त मुस्कान थी उसके चेहरे पर। कहा था—"मैं सेनानायक हूं, और तुम्हारे लिए कारावास में एक अतिरिक्त पद बना रहा हूं। तुम उपाधीक्षक होगे वहां के। निवास-व्यवस्था भी वहीं रहेगी! वसुहोम की पत्नी अनुराधा की चतुरता और नीतिज्ञता को लेकर बहुत सूचनाएं मिली हैं हमें। हमारी इच्छा है कि तुम सपत्नीक वहां रहो! तुम्हारी पत्नी यदि वसुहोम की दुष्टा स्त्री पर दृष्टि रख सकेगी, तो तुम वसुहोम की हर कार्यविधि को देखते रहोगे।"

कटक ने सब सुना। मस्तिष्क में बिठा लिया। सहस्र मुद्राओं के बोझ तले उसे अनुभव हुआ था कि सारा दारिद्रय-दुःख दब गया है। तिस पर निवास व्यवस्था भी थी। सम्मानपूर्ण पद भी। केशी के प्रति आभार से मस्तक झुकाकर उत्तर दिया था उसने—"जैसी सेनापति की इच्छा! आश्वस्त रहें, हम लोग अपना दायित्व निबाह लेंगे।"

"मुझे तुमसे यही आशा थी!" केशी ने उत्तर दिया, फिर विदा कर दिया था उसे।

सहस्र मुद्राओं को लिए प्रसन्न मन अपने दरिद्रतापूर्ण घर में लौटा था कटक। आनंद के अतिरेक ने उसे वायु की तरह हल्का कर दिया था। लगता था कि गोल-गोल स्वर्ण मुद्राएं किसी विशाल रथ के चक्रों की तरह उसे अपने ऊपर लिए हुए दौड़ाती चली आयी हैं। आते ही चंचला को बाहुपाश में कसकर चूम लिया था उसने। चीखा था—"प्रसन्न हो जाओ देवी! हमारे सभी क्लेश दूर हुए। अब न तो सर्वमन दुग्ध के लिए व्यथित हो सकेगा, न ही हम लोग क्षुधा कष्ट भोगेंगे! देखो···देखो यह सम्पत्ति भंडार!" कहते हुए उसने चंचला के सामने धरती पर वह थैली उलट दी थी। खनखनाहट का स्वर बिखराती हुई सहस्र मुद्राएं जहां-तहां बिखर गयीं।

थी चंचला या यों कि अनुभव ही नहीं कर पा रही थी। कैसी विचित्र मनः-स्थिति है यह? कैसी विचित्र आँखें? मनुष्य पाकर भी अनुभव न कर सके और देखकर भी देख न पाये।

वसुहोम भी शान्त स्वभाव से सन्नाटा ओढ़े हुए सब कुछ अपने निवास से देखे जा रहे थे। महाराजाधिराज कंस के मगधराज की पुत्रियों से सम्बन्ध हो जाने का उत्सव! आनन्द और उल्लास का उत्सव!

कितनी बार अनुराधा आयी, कितनी बार सामने से चली गयी, देख-कर भी न देख सके थे वसुहोम। क्या होगा उस समय, जब यह सारा समाचार वसुदेव-देवकी को सुनाया जायेगा? अनजाने ही उन्होंने सोचा।

पर यह समाचार लेकर जायेगा कौन उनके पास? वसुहोम व्यग्र हो उठा था। क्या वसुहोम या अनुराधा को ही यह समाचार ले जाना होगा? समाचार पहुँचाया न जाये, यह तो उचित नहीं। सम्भवतः महाराज कंस भी इससे अप्रसन्न हों? किन्तु प्रश्न वही है, समाचार लेकर उनके पास जाये कौन?

भोर से अनुराधा और वसुहोम बार-बार विचार कर चुके हैं कि देवकी-वसुदेव के पास पहुँचे, पर किस तरह, किस आत्मशक्ति को संजो-कर उन्हें धैर्य बंधायेंगे, समझ नहीं आ रहा है? वसुहोम ने सबसे पहले अनुराधा से ही कहा था—"देवी! तुम चली जाओ ना उनकी सेवा में। निश्चय ही वे बहुत व्यग्र और दु:खी होंगे। उन्हें धैर्य दो!"

और अनुराधा ने रिक्त दृष्टि से पति की ओर देखा, बोला—"आप क्यों नहीं जाते? कारागार अधीक्षक तो आप हैं? आप ही का दायित्व है कि आप उनके पास पहुँचें। उनके दुःख का निवारण करें।"

वसुहोम सिटपिटाकर देखने लगा था पत्नी को। स्पष्ट था कि जिस शब्दचातुर्य से वह अनुराधा को उलझाना चाहता है, उसी शब्दचातुर्य से अनुराधा ने उत्तर दे दिया है। पर हारा नहीं था वह। शब्दचातुर्य को अधिक जटिल बना दिया था उसने। विश्वास था कि शायद पत्नी बार अवश्य ही स्वीकार लेगी। स्त्रीत्व को जगाया जाये, तो

वह दुस्साहस को सहज भाव से निबाह सकेगी। कहा—"देवी! मानता हूं कि दायित्व मेरा ही है। यह स्वीकारने में भी मुझे संकोच नहीं है कि महामन्त्री वसुदेव के प्रति सेवक-धर्म से जुड़ा हुआ हूं; किन्तु इस समय जो स्थिति है, उसमें वसुदेव को नहीं, देवकसुता को सांत्वना की आवश्यकता है और वह तुम ही दे सकती हो उन्हें। तुमसे अधिक नारी मन की पीड़ा को और कौन समझ सकेगा? तुम्हें ही जाना चाहिए।"

अनुराधा उठ पड़ी थी—"नहीं, स्वामी! मुझे इस क्षण इस आज्ञा से मुक्ति दें। उसका गला भर्रा गया था—"मैं···मैं संभवतः सरला देवी देवकी की पीड़ा को हर नहीं सकूंगी। संभवतः अधिक पीड़ित कर दूंगी। स्त्री हूं ना, अतः मेरी यह दूसरी कठिनाई है! और इसके पूर्व कि वसुहोम कुछ और कह सकें या किसी अन्य शब्द जाल] का सहारा लें, अनुराधा उन्हें अकेला छोड़कर चली गयी थी।

क्या करें वसुहोम? सवाल पुनः खड़ा हो गया था। हर बीतते पल के साथ और अधिक गहराता जाता था प्रश्न; किन्तु वसुहोम अनिश्चय में!



अनिश्चय की इस स्थिति को भी तो बहुत देर नहीं रखा जा सकता, वसुहोम ने सोचा। समारोह की तैयारियां निरन्तर चल रही थी। रंग, गुलाल, नृत्य-रास, सभी की व्यवस्था की गयी थी। विभिन्न वाद्ययंत्रों को भी मंगवाया गया था, उनके वादक भी आमन्त्रित किये गये थे।

क्या होगा उस क्षण, जिस क्षण समारोह प्रारंभ होगा? अंधेरे कारागृह मे ममत्व की अपार पीड़ा झेलती देवकी के कानों से लेकर मस्तिष्क तक कैसे-कैसे लौहप्रहार होंगे! क्षतविक्षत हो उठेंगी वह। अपने ही भीतर लहूलुहान।

न रोना संभव होगा, न हंसना। एक भयावह कल्पना और डराती है वसुहोम को। कहीं इस सबका प्रभाव सरलहृदया देवकी के मस्तिष्क पर न हो जाये। सन्तुलनहीन हो बैठे वह।

लगा था कि खंड-खड अपने ही भीतर दरकने लगे हैं। बर्फ की चट्टान जैसे! फिर ये खंड हर शब्द-विचार के साथ-साथ बर्फ की फुहार बनकर दृष्टि, सोच, संवेदन सभी को मृतवत् करते हुए। गलाव से पूर्व अनुभूतिशून्यता का डरावना अनुभव!

वसुहोम को जाना चाहिए उनके पास। चुप होकर ही क्यो न पहुचें;

पर पहुंचना चाहिए। उनकी उपस्थिति संभवतः उन्हें शान्त न भी करें; किन्तु जीवंतता का अहसास तो करवा ही देगी। उठ खड़े हुए थे वह; पर लगा कि टांगें साथ नहीं दे रही हैं। थोड़ी ही देर बाद समझ लिया था, नहीं जा सकेंगे। न मन साथ देता है, न शक्ति, न शरीर।

बैठ गये; पर बैठकर भी तो सहज नहीं रह पा रहे हैं? सहसा प्रहरी को बुला लिया था उन्होंने—"सुनो !"

वह सामने आ खड़ा हुआ। आज्ञा पालन के लिए तत्पर।

"उपाधीक्षक महोदय से कहो, हम स्मरण करते हैं।" वसुहोम ने आदेश दिया।

प्रहरी तीव्रगति से उस ओर चल पड़ा, जिस ओर कंटक समारोह की व्यवस्था के आदेश दे रहा था। कुछ समय बाद कटक को साथ लिये प्रहरी उपस्थित हो गया। वसुहोम ने इस बीच निश्चित कर लिया था कि किन शब्दों में, किस तरह कटक को आदेश देंगे। प्रहरी को नियत स्थान पर जाने के लिए कहकर वसुहोम बोले थे—"बैठो, उपाधीक्षक !

कंटक बैठा रहा। वसुहोम एक बार पुनः सोच में पड़ गए; किस तरह बात प्रारम्भ करें! कैसे कहें! ऐसी बातें आदेश-भाव से तो कही नही जाती। कटक भी सविनय निवेदन कर सकता है कि यह दायित्व कारागार के मुख्याधीक्षक का ही है।

कंटक टकटकी लगाये हुए अपने उच्चाधिकारी की ओर देखे जा रहा था। आज उसकी दृष्टि बदली हुई थी। चेहरा विषादग्रस्त था। कहीं-कहीं अनुभव हो रहा था कि वह वसुहोम और अनुराधा के प्रति भी अपराधी हैं; पर वसुहोम का ध्यान इस ओर नहीं गया। वह अपने ही सोच में पड़े रहे। पल बीतते रहे। हर रिक्त पल ज्यादा ही रिक्त होता अनुभव हुआ।

☐

"कंटक !" देर बाद वसुहोम ने बात प्रारम्भ की थी—"आज रात्रि से ही मन-शरीर कुछ अस्वस्थ से हैं। इच्छा हो रही है कि आज का दिवस किसी एकात मे बिता दू। ऐसा एकांत, जहां कोई न हो, केवल शान्ति हो।"

कंटक ने कुछ नहीं कहा, सुनता रहा। दृष्टि में वही रिक्तता। मन भी खाली, पर मस्तिष्क समझने का पूरा प्रयत्न करता हुआ! वसुहोम की अस्वस्थता, एकांत इच्छा और शान्ति की चाहना किस कारण, किस प्रति-

क्रिया में है, वह खूब जानी पहचानी है।

"पर हम राजसेवकों के भाग्य में वह भी नहीं।" सहसा वसुहोम अपने स्थान से उठ खड़े हुए थे—"व्यग्रतापूर्वक हथेलियां मलते हुए टहलने लगे, हर कदम के साथ उतनी ही बेचैन बड़बड़ाहट—"सैनिक या साधारण सेवक होना कितना अच्छा होता है, कंटक! कोई दायित्व नहीं होता। अपनी इच्छानुसार अवकाश भी लिया जा सकता है। अपनी इच्छानुसार जहां चाहे, जो चाहे किया भी जा सकता है।"

कंटक ने गहरा श्वांस लिया। बुदबुदाया—"हां, नायक! आप उचित ही कह रहे हैं।"

वसुहोम ने चौंककर उसे देखा। लगा कि स्वर कुछ बदला हुआ है कंटक का। दृष्टि में भी वह सतर्कता नहीं दीख रही है, जो अक्सर वसुहोम से चर्चा करते समय हुआ करती थी। ऐसा क्यों?

पर विचार छोड़ दिया। इस समय यह सब विचारणीय नहीं। विचारणीय है केवल यह कि किस तरह अपना दायित्व कंटक को सौंप दिया जाये।

"महाराज कंस और मगधपति की पुत्रियों का सम्बन्ध निश्चित होना अवश्य ही शुभ समाचार है; पर एक दुविधा चिन्तित ही नहीं, व्यग्र कर रही है मुझे।" बोलते-बोलते वसुहोम कुछ थमे, कहा—"महामन्त्री वसुदेव और देवकी की पीड़ाग्रस्त मनःस्थिति में यह आनन्द समाचार सुनाना बहुत कष्टकर क्रिया होगी। कम-से-कम मैं तो इतना भावुक और व्यग्र हो उठा हूं कि मेरे लिए असंभव है।

कंटक ने पल भर में समझ लिया था कि वसुहोम उसे कौन-सा दायित्व सौंपने वाले हैं। इसके साथ ही त्वरित बुद्धि उसने बचाव भी विचार लिया। कहा—"समझ रहा हूं, महोदय! किन्तु मुख्याधीक्षक के नाते इस कर्तव्य निर्वाह के लिए आप बाध्य हैं। इतना महत्वपूर्ण समाचार, महत्वपूर्ण राजपुरुषों तक उच्चाधिकारी ही पहुंचा सकते हैं। यह साधारण अधिकारियों या सेवकों के लिए अनाधिकार चेष्टा होगी।"

वसुहोम स्तब्ध हो गये। कंटक सिर झुकाए हुए था। मुस्करा रहा है या अपनी ओर से दुःखी है, अतः बात टाल रहा है, तय नहीं कर सके। चेहरा इतना झुका हुआ था कि न दृष्टि पड़ी जा सकती थी, न होठों की हरकत समझी जा सकती थी।

वसुहोम चुप खड़े रह गये। न शब्द सूझे, न शब्दों की राह और कंटक अवसर का लाभ उठाकर खड़ा हो गया—"मुझे जाने की आज्ञा दें, श्रीमन् ! अभी समारोह का बहुत-सा काम पड़ा है।"

वसुहोम न हां कर सके थे, न ना। कटक चला गया। इस तरह जैसे भाग गया हो। एक गहरी श्वांस खींचकर वसुहोम पुन: आसन पर बैठ गये।

☐

सुबह से दोपहर बीत गयी थी। न भोजन किया, न इच्छा हुई। आश्चर्य इस बात पर था कि कंटक भी लगातार सामने घूमता, समारोह व्यवस्था करवाता दीखता रहा। क्या वह भी भूखा ही है ?'''और देवकी-वसुदेव ? अनायास याद हो आया था।

तुरन्त सेवक बुला भेजा, आज्ञा दी थी—"ज्ञात करो, देवकसुता और पूज्य वसुदेव तक भोजन पहुंचा या नहीं ?"

सेवक दौड़ा गया। कुछ पलों बाद सूचना दी थी—"समय पर पहुं-चाया गया था श्रीमन् ! किन्तु उन्होंने वापिस करवा दिया ! कहा, इच्छा नहीं है।"

सूचना देकर सेवक लौट गया। वसुहोम सोचने लगे थे। भला इच्छा हो भी कैसे सकती है ? उनका रक्तांश, उन्हीं के सामने हत किया गया। भोजन ही क्या, कोई भी इच्छा नहीं रह गयी होगी। संभवत: जीवनेच्छा भी नहीं।

मन ज्यादा व्यथित हो उठा। उठे, चहलकदमी करने लगे। कितनी बार सुबह से यही कुछ करते रहे होंगे, इसी तरह, याद नहीं; पर इससे अधिक कुछ कर नहीं पा रहे है। कर भी क्या सकते हैं ? लगता है कि गहन वन में भटक रहे हैं, एक अवश बालक की तरह। न कोई राह सूझती है, न बुद्धि साथ देती है। शक्ति शेष भी होते जा रहे हैं। उससे कहीं अधिक मन थक गया है।

क्या कंटक भी मन-ही-मन थक गया ? दृष्टि पुन: कंटक पर जा ठहरी थी। सूर्य की चिलचिलाती धूप में वह नित्यादि कार्यक्रमों के लिए विशाल मंच की संरचना करवाने में व्यस्त था। यहां-वहां देखता-भालता हुआ। भूले-भटके तेज स्वर में उसकी ओर से दिये जाने वाले आदेश भी सुनायी पड़ रहे थे वसुहोम को।

अनुराधा कब पास आ खड़ी हुई थी, पता ही न चला। जब स्वर कानों में घुले, तब चौंककर देखा था उसकी ओर, तनावग्रस्त था उसका चेहरा। स्वर उससे भी अधिक उखड़ाव लिये हुए—"भोजन नहीं करेंगे ?" उसने सीधा सपाट प्रश्न कर दिया था।

"न, मन नहीं है।"

"कब तक मन न होगा ?"

वसुहोम ने उत्तर में केवल एक गहरा श्वास लिया। चुप रहे। अनुराधा पास ही बैठ गयी। उसी तरह यांत्रिक भाव से समारोह की रंगबिरंगी तैयारियां देखती हुई। वसुहोम भी देखते रहे।

सूर्य की धूप ढलने को हो आयी, तब अनुराधा ने प्रश्न किया था—"देवकसुता से कब तक भेंट नहीं करेंगे स्वामी ?"

"हां।" वसुहोम चौंके, उत्तर नहीं सूझा।



"कब तक ?" अनुराधा ने पुनः प्रश्न दोहरा दिया था।

वसुहोम उठे, फिर हड़बड़ाहट में घूमने लगे। वही बालक का भाव। जंगल में जहां-तहां विक्षिप्तों की तरह राह खोजता हुआ बालक! सहसा बड़बड़ाये। बिल्कुल असम्बद्ध शब्द—"भेंट तो करनी ही होगी।"

"तब इतना सोच-विचार क्यों ?" अनुराधा ने कहा।

वह पुनः चुप हो गये।

अनुराधा बोली थी—"मेरा विचार तो है कि जाकर इसी क्षण वह सब कह दीजिए, जो कहना होगा। न कहना भी असम्भव है और कह पाना भी; पर इसमें संभावना का यदि कहीं अंश है, तो वह कहने में ही है। न कहकर आप राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते।"

वह थम गये। कहा—"हां।"

"तब वही कीजिए!" अनुराधा बोली—"आपके लौटने के बाद मैं स्वयं देवकी से मिलूंगी। यथाशक्ति उन्हें ढाढ़स देने का प्रयत्न करूंगी। जानती हूं कि व्यर्थ ही होगा; पर उनकी रिक्तता को जितना भरा जाये—उतना ही उनके लिए श्रेष्ठ है।"

वसुहोम पत्नी को देखते रहे। सहसा एक निश्चय मन में जनमा, फिर वह निश्चय दृढ़ता में बदल गया। तीव्रगति से कारागार की उस कक्ष की ओर चल पड़े, जिधर वसुदेव-देवकी बन्दी थे।

थोड़ी ही देर बाद वह सीखचों वाले द्वार के पास खड़े थे। प्रहरियों को आदेश दिया था—"खोलो !"

प्रहरियों ने चुपचाप आज्ञापालन किया। द्वार खुलते ही वसुहोम भीतर जा पहुंचे।

□

द्वार खुलने का भी कठोर स्वर हुआ था, वसुहोम के भीतर पहुंचने की भी पदचापें उभरी होंगी; पर आश्चर्य ! उन्होंने न दृष्टि उठायी, न उनके शरीरों में कोई स्पंदन हुआ। वसुहोम जिस तीव्रगति से आये थे, सहसा गति गुम गयी। स्थिर खड़े देखते रह गये।

वे जीवन्त थे। वसुहोम ने स्पष्ट देखा था उनकी तीव्रगति श्वांस का चलना; किन्तु उनका व्यवहार मृतवत् था। वे पास-पास बैठे हुए थे। कारागार का अन्धकार उन्हें धुंधलाये हुए था। इसके बावजूद वसुहोम उनकी आंखें देख पा रहा था। दृष्टि की दिशा भी। वे टकटकी लगाये हुए उस स्थान को देख रहे थे, जिस स्थान पर एक बड़ा धब्बा दीख रहा था। संभवत: गन्दी कालकोठरी के इस हिस्से पर विशेष सफाई-धुलाई ने यह धब्बा पैदा कर दिया था।

वसुहोम ने भी अचरज से उस धब्बे को देखा। अचरज की बात थी, गन्दगी से घिरी धरती पर सफाई भी धब्बे जैसी लगती है ! सहसा उन्हें लगा था कि वह धब्बा एक अदृश्य सौन्दर्य और चमक से भरा हुआ है। लगता है कि पृथ्वी का उतना हिस्सा ही जीवंत हो उठा है और फिर अनुभव हुआ, जैसे उस हिस्से पर कोई नन्हा शिशु हौले-हौले अपने हाथ-पैर हिलाता हुआ मुस्करा रहा है। मुस्कान का यह सौन्दर्य ही वह सफाई है। स्वच्छ मुस्कान-सी ! देवकी और वसुदेव उसी मुस्कान को देख रहे हैं।

और वसुहोम की दृष्टि भी वहीं ठहरी रह गयी है। जाने क्यों वसुहोम का मन हुआ कि उस स्थान को हौले-हौले ही सही हथेली से दुलरायें। बिल्कुल ऐसे जैसे किसी बालक को दुलराया जाता है; पर अगले ही पल सतर्क हो गया वह। मूर्खतापूर्ण भावावेश में बहकर वह इस क्षण वसुदेव और देवकी को और व्याकुल नहीं करेगा। स्वर में आश्चर्यजनक संयम संजोकर कहा था उसने—' महामन्त्री को प्रणाम !"

वसुदेव ने उसे देखा, ऐसे जैसे कोई पत्ता थरथराया हो, फिर स्थिर हो गया हो। हवा के झोंके जैसा स्वर गुम, पत्ते की जीवंतता गायब।

जीवन का प्रमाण है, तो थमी, चमकती पुतलियाँ जो वसुहोम के चेहरे पर टिकी हैं, प्रश्नातुर। ठीक वैसे ही, जैसे वृक्ष की शाख पर पत्ता झूल रहा है !

शायद यह प्रश्न कर रहे हैं, क्यों ?

और वसुहोम बिल्कुल किसी वाद्य यंत्र की तरह बज उठा था— "कारागार के प्रांगण मे आज एक भव्य समारोह आयोजित है देव ! महाराज कंस से मगधपति जरासन्ध ने अपनी दोनों पुत्रियों का सम्बन्ध निश्चित किया है।"

उन्होंने सुना, या दृष्टि उठाकर देखा या फिर उनके शरीर में कोई हरकत हुई, वसुहोम को याद नही है या यह कि वसुहोम उस सबकी ओर न तो ध्यान ही दे सका था, न देख ही सका।

एक पल रुका रहा था। लगता था कि कदम जमकर रह गये हैं, फिर बोला था—"आप भी उसमे हिस्सा लें !" इसके बाद वह इस गति से मुड़ा था, जैसे किसी बवंडर ने मुड़ाव लिया हो। लपक पड़ा द्वार की ओर। भागते-भागते ही आदेश दिया था उसने—"द्वार बन्द कर दो।"

प्रहरियों ने द्वार बन्द किये।



वसुहोम भागा चला आया था, फिर हाँफता हुआ-सा बैठ रहा। कहाँ, किस जगह आ बैठा है, यह भी स्मरण नहीं था उसे। उसे स्मरण था, तो केवल यह कि वह कर्तव्य-निर्वाह के नाम पर एक पाशविक हरकत कर आया है। क्या सोचा होगा उन्होंने, जिस क्षण सुना होगा, उस क्षण ? वह अपने ही भीतर कराह अनुभव करने लगा। दृष्टि में एक बार पुनः देवकी-वसुदेव उभर आये। पास-पास बैठे हुए, चुप, मृतवत् !

'हाँ, मृतवत् ही तो हो गये होंगे वे।



मृतवत्। वसुदेव यही अनुभूति करते हैं। स्वयं से अधिक देवकी के लिए यही अनुभूति होती है। कितनी बार मन हुआ है कि रो पड़ें, बिलख-बिलखकर। उन्हें देखकर शायद वह भी रोयें। उनका रोना उन्हें सहज कर देगा। रात भर यही कुछ प्रयत्न किया था। अन्त में स्वयं रोकर देवकी को रुला देने की कल्पना जनमी थी।

पर लगा था कि रो नहीं पा रहे हैं, या कि रो पाना भी उनके वश में

नहीं। शायद उनके वश में कुछ भी नहीं रह गया है। न रो पाना, न हंस पाना। सोचते हैं, पर विचारों में क्रमबद्धता नहीं ला पाते। क्रमबद्धता लाने का प्रयत्न करते हैं और सोचना थमने लगता है। ऐसे बेबस, बेचैन और व्यर्थताबोध से आक्रांत तो कभी भी नहीं थे वह? तब यह क्या हुआ? पुत्र-वध का वह क्रूर कांड सहन नहीं कर सके हैं।

संभवतः यह भी सही नहीं। वसुदेव बहुत कुछ सहन कर सकते हैं। पुत्र-वध भी। कर्तव्य की चौखट पर खड़े होकर आगे-पीछे के किसी भी खाई जैसे सत्य में अपने आपको सन्तुलित रख पाने का सामर्थ्य रहा है उनमें; किन्तु यही एक ऐसी स्थिति आयी है, जब वह असन्तुलित हो उठे हैं। असन्तुलित से भी अधिक यदि कुछ होता हो, तो वह हो गए हैं। संभवतः विक्षिप्त!

मन कहता है, नहीं, विक्षिप्त भी नहीं हो तुम। तुम केवल विह्वल हुए हो! साहसहीन! अब तुम्हारे वश में तुम ही नहीं रहे। किस शक्ति को जुटाकर मथुरा में पुनः गणसंघीय पद्धति जीवंत कर सकोगे? कौन-सी आशा शेष रही है?

सब निःशेष हो गया है। यहां तक कि विचार तक में कुछ शेष नहीं रहा। व्यर्थ है वसुदेव का संघर्ष। व्यर्थ है उनका राजनीति चातुर्य। व्यर्थ हैं उनके बलिदान और व्यर्थ है त्याग, धर्म, मूल्य, सब व्यर्थ।

देवकी सामने हैं। शिलावत्। दृष्टि ठहरी है गंदले कारागार से अबोध शिशु के वधस्थल को साफ किए गए धब्बे पर। वसुदेव ने पहले धैर्य बंधाने की चेष्टा की थी उन्हें। एक बार फिर मन हो आया था कि कुछ कहें। जीवन की निस्सारता पर उपदेश करें।

उपदेश! शब्द विचार भर के साथ अनुभव हुआ कि अपने ही हाथों अपने ही गाल पर थप्पड़ मारा है। उपदेशों से कोख का घाव भरा जा सकता है भला? किसी सद्यजात शिशु की माता को सांत्वना दी जा सकती है? विशेषकर उस माता को, जिसने पहली बार मातृसुख की अनुभूति की हो और जिसे पहली ही बार अपने ही उदरपिंड को खंग से दो टुकड़ों में विभाजित देखना पड़ा हो?

असम्भव। केवल असम्भव नहीं, मूर्खतापूर्ण विचार है यह। ऐसा किया तो वसुदेव-देवकी को अधिक आहत कर देंगे। वह विचार भी त्याग दिया था। अब चुप रहना ही श्रेयस्कर; किन्तु जब मन असंख्य चीत्कारों

और कोलाहल के भयावह स्वर से भरा हुआ हो, तब भला चुप रहा जा सकता है ? पल-पल आंखों से मांस नोचा जा रहा हो, तब कौन-सी शक्ति है, जो मनुष्य को चुप रख सकती है ?

वसुदेव को वही शक्ति खोजनी होगी। केवल खोजनी ही नहीं होगी, सयोजित करके अपने आपको उस शक्ति से ज्योतित करना होगा। बली बनाना होगा। वही शक्ति देवकी के दुख मे सांत्वना बन सकेगी। पर वह शक्ति खोजनी सहज नहीं, जुटाना तो दरकिनार !

और वसुदेव ने अनुभव किया कि उनका चुप रह पाना भी असम्भव है; किन्तु बोल पाना भी कहां संभव रह गया है ?

उनके लिए संभव रह गया है विक्षिप्तों की भांति विलाप करना। चीख पड़ना चाहा था उन्होंने; पर यह चीख तो उसी क्षण विद्रोह करके उनसे कहीं दूर, बहुत दूर चली गयी थी, जब कंस ने खंग खींचकर उस कोमल शिशु का वध किया।

वसुदेव की अपनी दृष्टि भी धब्बे पर ही जा ठहरी थी।

कारागार का अन्धकार गहन होता जा रहा था। आज कोई प्रकाश-व्यवस्था करने भी नहीं आया। वसुदेव को अचरज हुआ था। उससे भी अधिक अचरज हुआ था कि वसुहोम उन्हें महाराज कंस के सम्बन्धोत्सव के लिए निमंत्रित कर गया है। पीड़ा मन मे और गहरा गयी। कैसी विडम्बना है ईश्वर ! मन-शरीर से विभाजित हो चुके वसुदेव-देवकी को किसी समारोह में निमन्त्रित किया गया है। समारोह भी उत्सव।

कारागार का कक्ष बड़ा था। कंस ने कृपालु होकर उन्हें एक कोठरी के बजाए दो कोठरियां दे दी थी। कोठरी के दोनों ही भागों मे बहुत ऊंचाई पर दो खिड़कियां बनी हुई थी। खिडकियां थी या केवल जीवन के लिए वांछित हवा और दृष्टि के लिए प्रकाश का छल देने वाले साधन !

जिस दिन पहली-पहली बार कारागार में लाये गए, उस दिन इन खिड़कियों को देखकर हंस पड़े थे। देवकी से कहा था—"देखा, देवी ! मनुष्य प्रकाश और वायु को भी छलता है। मनुष्य का प्रकृति से यह उपहास कितना विचित्र है।"

उत्तर मे देवकी ने बेबस दृष्टि उठाकर उन खिड़कियों को देखा था।

□

आज वसुदेव स्वयं उसी तरह बेबस दृष्टि से देख रहे हैं उन खिड़कियों

को। प्रकाश-किरणों का एक पुंज गिर रहा है उनसे। इस प्रकाशपुंज को जैसे खिड़कियों पर जड़ी सलाखों ने चीर डाला है। विभाजित कर दिया है। ठीक वैसे ही जैसे देवकी-वसुदेव के जीवन-प्रकाश या जीवनोल्लास अथवा आनन्द या कि ममत्व को कंस के कठोर खंग ने विभाजित कर डाला था।

वसुदेव की अपनी दृष्टि भी देवकी की ही तरह धब्बे पर जा ठहरी। लगा कि धुलाई-पुछाई के बावजूद वह साफ नहीं हो सका है। रक्त बिखरा हुआ है उस पर और उस रक्त के बीचोंबीच है, उनका रक्तरंजित शिशु।

चाहा कि थूक का घूंट निगलें, गला तर कर लें। पर तुरन्त ही अनुभव हुआ, जैसे गला सूख गया है और जबड़ों के भीतर थूक भी नहीं रहा। तड़प से भर उठे वह। उठे, कांपते स्वर में पुकार बैठे थे—"अरे कोई है? जल! हमें जल दो!"

कारागृह के द्वार पर हलचल हुई। वसुदेव को लगा कि कुछ परछाइयां तिरी हैं, इधर से उधर। स्वर कोई नहीं आया।

"जल, हमें जल चाहिए।" जोर से पुकारा था उन्होंने, पर व्यर्थ। पुकार में अब परछाइयों की प्रतिक्रिया भी नहीं हुई। पत्नी की ओर मुड़कर पूछ बैठे थे—"जल पियोगी न देवी!"

और देवकी ने उन्हें देखा। वसुदेव चुप हो गये। आतंकित, ऐसे जैसे बिल्कुल पथरा गये हों। कैसी लग रही हैं देवकी की आंखें। नहीं; आंखें नहीं हैं ये। ये हैं, दो काले गहरे, सूखे कुंए। तल कहां है, नामालूम'''।

वह बोली नहीं थी। उसी तरह कुछ पल देखती रही, जैसे वसुदेव को उन दो गहरे, अन्ध-कूपों में गिराये चली जा रही हों, फिर मुड़ी, दृष्टि पुनः उसी स्थान पर टिका दी। वसुदेव की व्यग्रता अधिक बढ़ गयी। उससे कहीं अधिक बढ़ गया मानसिक असन्तुलन और उससे भी अधिक बढ़ गया गले का सूखना।

पूरी शक्ति लगाकर पुनः चिल्लाये वह—"जल।" आगे कुछ चीखें, इसके पूर्व ही विशाल लौहद्वार पर परछाइयां पुनः गहरायीं, हलचल हुई, फिर द्वार तीव्र स्वर करता हुआ खुलने लगा। और द्वार खुलते ही परछाईं की ही तरह कोई आगे बढ़ आया। देवकी प्रतिक्रियाहीन न रही, वसुदेव स्तंभित। कालिख में आगन्तुक कालिख-सा ही दीख रहा था।

□

चंचला थी। खिड़कियों के विभाजित प्रकाश में आकृति स्पष्ट हुई। उसने भी उन्हें स्पष्टतः देखा। वसुदेव की दृष्टि से दृष्टि मिलते ही सहसा उसने आंखें झुका ली। चुपचाप प्रकाश-व्यवस्था करने लगी। सहसा वसुदेव बोले थे—"नहीं, चंचला ! प्रकाश रहने दो !"

उसके हाथ कांप गये।

"हां, यही उचित होगा हमारे लिए।" वसुदेव ने कहा था—"प्रकाश असह्य हो गया है देवी ! उसे सहन करने के लिए प्रकाशित मन आवश्यक है और वह न मेरे पास है, न देवकसुता के पास ! हमारे लिए अन्धकार ही शुभ।"

वह आगे भी कुछ कहते; किन्तु लगा था कि एक हलकी, बहुत हलकी सिसकन उभरी है। चौंककर देवकी की ओर देखा। वह शान्त थी, तब सिसकन कहां से उभरी! दृष्टि चंचला पर गयी। चकित ही नहीं, अविश्वास के भाव से दृष्टि ठहरी रह गई। अरे, केशी के विश्वस्त सेवक कंटक की धूर्त पत्नी सिसक रही है !

वह मुड़ गयी। आज्ञापालन किया था उसने। प्रकाश-व्यवस्था नहीं की, लौट पड़ी।

वसुदेव को स्मरण हो आया, जल चाहिए उन्हें। लगभग चीखते हुए-से बोले थे—"केवल जल-व्यवस्था करवा दो चंचला !"

चंचला ने उत्तर नहीं दिया। बाहर निकल गई। कुछ क्षणों बाद लौटकर उसने वसुदेव के सामने जल-पात्र ला रखा था। वसुदेव ने बिना कुछ कहे चुपचाप कांपते हाथों से पात्र को उठाया और देवकी की ओर बढ़ा दिया—"देवी !"

देवकी ने पुनः दृष्टि घुमायी। दृष्टि नहीं, दो कुंए फिर से सामने आ गये। जलरिक्त। अन्धकूप !

"जल।" वसुदेव का स्वर कांपा था।

देवकी कुछ पल उन्हें देखती रही, सहसा हंस पड़ी। जोर-जोर से हंसने लगी। पात्र वसुदेव के हाथों से छूट गया। चंचला भयभीत देखती गयी। वसुदेव ने जोर-जोर से देवकी को बांहें थामकर झकझोरना प्रारम्भ कर दिया था—देवी···! देवी ! क्या हुआ? क्यों हंस रही हो तुम ? देवकी।" वह जोरों से चीखे थे। चंचला बदहवास भाग खड़ी हुई बाहर की ओर।

देवकी हंसे जा रही थी, निरन्तर। क्या विक्षिप्त हो गयी वह ?

□

बदहवास, हांफती हुई चंचला आ पहुंची थी कंटक के पास।

"क्या हुआ तुम्हें ?" कंटक ने उसकी अस्त-व्यवस्त दशा देखकर प्रश्न किया—"क्या बात है ?"

"वह···वह देवकसुता···देवकी···।"

"अरे, बोलो तो, क्या हुआ देवसुकता को ?" कंटक ने बौखलाकर प्रश्न किया। बहुतों तक स्वर गया होगा उसका। अनुराधा और वसुहोम भी दौड़े चले आये।

"वह···वह विक्षिप्त हो रही हैं।" बहुत कठिनाई के साथ बोल सकी थी चंचला। अन्तिम शब्द कहते-कहते लगभग रो पड़ी थी।

वे सब लपक पड़े थे कारागृह के उस कक्ष की ओर। सबसे अन्त में चंचला। चाल थकी हुई थी; किन्तु मन गतिशील, व्याकुल भाव से लपकता हुआ।

कारागृह के द्वार खुले थे। प्रहरी चकित भाव से भीतर झांक रहे थे और भीतर से देवकी हंसी नहीं, रुलायी के स्वर आ रहे थे। बिलकुल बच्चों जैसी रुलायी। भीतर पहुंचकर सबने देखा था, वसुदेव व्यथित देवकी को सीने से लगाये हुए हैं। होले-होले थपकियां दिये जा रहे हैं। ऐसे जैसे किसी बच्चे को सुलाने का प्रयत्न कर रहे हों।

वे सभी थमे से खड़े रह गये। पीड़ा से भरे हुए। परस्पर एक-दूसरे को पराजित भाव से देखते हुए, फिर एक-दूसरे से ही सहमते-कतराते हुए उन्होंने दृष्टियां चुरा ली थीं।

बाहर निकल आए थे वे। द्वार बन्द कर दिया था। समझ गये थे सब। देवकी संयत-असंयत मनस्थिति से गुजर रही हैं। कभी रो पड़ती हैं, कभी हंसने लगती हैं। सहज प्रतिक्रिया थी यह। होना ही था।

'किन्तु···।" बाहर आकर न चाहते हुए भी अनुराधा बोल पड़ी थी—"देवकसुता विक्षिप्त न हों, यह ध्यान रखना भी हमारा दायित्व है स्वामी !" वह सम्बोधित कर रही थी पति को। पति वसुहोम चुप थे।

कंटक और चंचला की ओर दृष्टि गयी थी उनकी। उनके चेहरों पर भी घोर अशान्ति लिखी हुई थी; किन्तु वे जैसे-तैसे स्वयं को सहज रखने . चेष्टा कर रहे थे। उससे भी अधिक स्वयं को चुप किए हुए थे।

वसुहोम ने गहरा श्वास खींचकर कहा था—"आप लोग चलें। मैं महामंत्री से बात करता हूं।"

इससे पूर्व कि कोई कुछ कह सके, वह पुनः कारागृह के उसी कक्ष की ओर मुड़ गया था।



बहुत शक्ति सहेजी थी। उससे कहीं अधिक संयम और उससे भी अधिक आत्मविश्वास। इन्हीं सबके सहारे वसुदेव से वार्ता कर सकेगा वसुहोम।

द्वार एक बार पुनः खुला। वसुहोम भीतर पहुंचा। अब दृष्टि-से-दृष्टि मिलाकर बात प्रारम्भ की थी उसने—"देव !"

वसुदेव ने उसे देखा। देवकी संभवतः हंसते-रोते थककर अब क्लांत हो चुकी थी। धरती पर ही लेटी हुई। वसुदेव उठ पड़े थे। दृष्टि में प्रश्नवाचक संजोये हुए वह उनके सामने जा पहुंचे।

"मैं···मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता था देव !" वसुहोम ने कहा। स्वर बहुत संभाला; किन्तु कम्पन से अलग नहीं कर सका।

"आओ।" वह दूसरी कोठरी की ओर बढ़ गये।

वसुहोम ने वहां पहुंचकर धीमी आवाज में कहा था—"जो घटना है, वह तो घटेगा ही महामन्त्री ! किन्तु इस समय आपको विशेष धैर्य से काम लेना होगा।"

वसुदेव ने केवल वसुहोम को देखा। गहरा सांस लिया। ऐसे जैसे सहमति व्यक्त की हो।

"मैं अपनी ओर से महाराज से प्रार्थना करूंगा कि यह सब देवक-सुता की उपस्थिति में न करें।" वसुहोम ने प्रस्ताव किया था।

वसुदेव इस वार्ता से कुछ सहज हुए। लगा था कि मन की व्यग्र छटपटाहट कुछ शान्त हुई है। कहा—"वे मानेंगे ?"

"मुझे विश्वास है, वे अस्वीकार नहीं करेंगे।" वसुहोम बोला।

वसुदेव चुप हो रहे।

वसुहोम ने कहा था—"अब जैसे भी हो माता देवकी को आप शान्त करें।" सहसा वह मुड़ गया था। बाहर निकल गया।

वसुदेव चुपचाप खड़े उसे देखते रहे। द्वार बन्द होने की आहट ने उन्हें पुनः चेताया। मुड़कर उस कोठरी की ओर चले, जिसमें देवकी बेसुध-सी

लेटी हुई थी।

दबे कदमों उन तक पहुंचकर चुपचाप बैठ रहे थे वह। अन्धकार और तीव्र हो गया था। ठीक तभी खिड़की से उभरती ज्योति-किरणों मे तीव्रता आ गयी। लगा कि रह-रह कर बाहर कुछ कौंधने लगा है।

समझ गये थे वसुदेव। महाराज कंस के सम्बन्धोत्सव का प्रारंभ हो गया है। उन्होने जबड़े कस लिये। शिलावत बैठे रहे।

अगले कुछ समय मे ही गीत-संगीत के स्वर उभरने लगे थे। विभिन्न रंगो के प्रकाश मे बाहर का वातावरण चकाचौंध से भर गया था। मंगल-गान भी चल रहे थे।

पर वसुदेव इस तरह शान्त, जैसे न सुनकर भी सुन न पा रहे हों। देख कर भी देख न सकते हों। अनुभूतिहीन !

कितनी देर तक वह सब चला था, यह भी अनुमान नही हुआ। अनुमान का प्रयत्न ही नही किया था उन्होंने। वह केवल अनुमान कर रहे थे शिशु-वध का। कब तक चलेगा यह सिलसिला ?

और सिलसिला चलता गया। केवल एक अन्तर पड़ गया था। वसुहोम की प्रार्थना स्वीकार कर महाराज कंस ने दुःखी देवकी के सामने अबोध शिशुओ के वध का क्रम बन्द कर दिया था। एक नयी व्यवस्था की गयी। इस क्रूरता मे परीक्षा हुई वसुदेव की। वसुहोम से मथुराधिपति बोले थे—"महामंत्री से कहो, अब वह स्वयं अपना बालक लाकर हमें सौंप दिया करें। यों भी यही उनका पूर्व में दिया गया वचन भी था।"

वसुहोम ने स्वीकार लिया। लौट आया था। बहुत प्रयत्न किया था वार्ता में कि कंस अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर ले, किन्तु निश्चय नही बदला था उनका। एक सीमा से अधिक वसुहोम बात करने का साहस भी नही संजो सका।

लौटकर सूचना वसुदेव को पहुंचा दी। कहा—"मुझे दुःख है देव ! इससे अधिक मैं कुछ भी नही कर सका। महाराज पूर्ववत् कठोरता अ

निर्ममता से भरे हुए हैं।"

वसुदेव ने चुपचाप नयी स्थिति स्वीकार ली थी। इस स्थिति के तहत वैसा ही करने भी लगे। क्रम प्रारंभ हुआ। दूसरे शिशु के जन्म के तुरत बाद ही वसुदेव ने उसे कंस तक पहुंचा दिया। उस दिन भी लगभग वही सन्नाटा, तनाव और पीड़ा बिखर गयी थी कारागृह में। देवकी को सुधि आये, इसके पूर्व ही कोमल शिशु को वसुदेव उठा ले गये थे। वसुहोम ने सहायता की। सबने देखा-अनदेखा कर दिया। सब अशान्ति से भरी गहरी शान्ति ओढ़े रहे। सब मथुराधिपति की क्रूरता के प्रति मन-ही-मन घृणा से भर उठे।

पर किसी ने किसी से कुछ भी व्यक्त नहीं किया था। परस्पर देखते, दृष्टि अपराध-बोध से झुका लेते। लगता था कि अवश हैं। बहुतेक की इच्छा होती, राजसेवा से मुक्ति ले लें। मनुष्य हैं वे, काल-सेवक नहीं।



किन्तु वैसा भी नहीं हो सकता था या कि किया नहीं जा सकता। कंटक अब चुप-चुप रहने लगा था। चंचला व्यग्र भाव से कभी-कभी बोखला पड़ती, कहती—"हमें इस सेवा से मुक्ति ले लेनी चाहिए स्वामी !"

कंटक उसे देखता, फिर दृष्टि जा ठहरती पुत्र पर। इकलौता पुत्र। वह घुटनों-घुटनों चलने के बाद अब धीमे-धीमे खेलने की चेष्टा भी करने लगा था। बेवस दृष्टि से पत्नी की ओर देखने लगता। लगता था कि इस सबका दोषी या कारण वही है।

और चंचला का भी यही अनुभव—"पाप के भागी बन रहे हैं हम !" वह बड़बड़ाने लगती थी—"निरंतर पाप के दलदल में समाये जा रहे हैं। देवकसुता के सात पुत्र नष्ट हो चुके। यह सिलसिला कब तक चलेगा ?"

'तब तक, जब तक विधाता चाहेगा।" कंटक जैसे थककर उत्तर देता।

चंचला और झुझला पड़ती—"या कि जब तक क्रूर कंस चाहेगा ?"

"कंस की ओर से यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होगा देवी ?" कंटक उत्तर देता—"वह एक भयातुर, कायर मनुष्य है। देखो तो कैसी असंभव चेष्टा कर रहा है ? मृत्यु को टालना चाहता है वह और मृत्यु ! सब जानते-मानते हैं, निश्चित है। वह विधि का निश्चित विधान है। उससे

किसी की कभी मुक्ति नही होती।"

चंचला का मन होता, चुप हो जाये, शान्त; किन्तु बार-बार वाचाल हो उठती। इस वाचालता का कारण बनता जा रहा था, सर्वमन। जब-जब बालक की ओर दृष्टि जाती तब-तब वसुदेव के शिशु स्मरण आने लगते। लगता कि कोई अदृश्य उसे डराने लगा है। कहता है—"चंचला! इस सर्वमन को देख रही है न तू? तेरे और कंटक के पापों का प्रायश्चित कभी यह करेगा। इसे भी वैसी ही मृत्यु मिलेगी, जैसी देवकी के अबोध बालकों को मिली है। वही घिनौनी मृत्यु।"

और चंचला चीखने लगती—"नही-नही।" स्वर गले से बाहर भले ही न आते हों; किन्तु लगता कि चीखी हैं। कितनी-कितनी रातों यही कुछ, इसी तरह सुना था उसने और अब मन में भय स्थायी भाव से बैठ गया था। यह होगा, अवश्य होगा।

इसी कारण बार-बार कंटक से कहती—"चल पड़ो यहां से।"

"और सेवा धर्म का क्या होगा देवी।" कंटक पूछता—"यह उच्च पद?"

"भूल जाओ इसे।" चचला जैसे रुआंसी होकर प्रार्थना करने लगती—"हम कही, किसी और नगर-राज्य मे जाकर दास हो जायेंगे; पर ऐसा उच्च पद नही चाहिए, जो पाप का भागी बनाये। एक दुष्ट के राज्य का अन्न खाना शरीर में विष पचाने की चेष्टा जैसा है देव। एक-न-एक दिन यह विष अवश्य फूटेगा और उस दिन हम उपचार के योग्य भी नही रह जायेंगे। चलो, यहां से निकल चलो।"

"किन्तु देवी! यह पाप हम तो कर नही रहे हैं।" कंटक तर्क करता, "हम केवल सेवक है, राजसेवक। पाप की योजना बनाना, उसे कार्यान्वित करना सभी कुछ तो कोई और कर रहा है, किसी और का सयोजन है। अब हम अपने आपको दोषी क्यों मानें?"

चचला नहीं चाहती थी कि सर्वमन को लेकर मन मे आयी शंका और भय पति को न बतलाये; किन्तु लगता था कि किसी-न-किसी दिन बतलाना होगा। शायद उसी दिन कंटक बदले, उसका निर्णय बदले, वह मुक्ति ले।

पर बोलते-बोलते थम जाया करती थी। वह सब सुनाकर पति को व्यथित नही करेगी चंचला। जानती थी कि कंटक को भी उसी की तरह

वह सब नहीं सुहा रहा है, जो कुछ हो रहा है; पर अवश थी। कंटक पद मोह में ग्रस्त था।

चंचला ने तर्क किया था—"पाप का संयोजन कोई भी कर रहा हो; किन्तु उसके क्रियान्वयन में सहायक बनने वाले भी दोषी और अपराधी होते हैं स्वामी!"

"यदि हम दोषी और अपराधी हैं, तब क्या वसुहोम और अनुराधा दोषी नहीं हैं?" कंटक ने भी तर्कवितर्क प्रारंभ कर दिया।

"यह वे जानें; पर हमें अपने बारे में विचार करना चाहिए!" चंचला ने कठोर स्वर में कहा।

"नहीं देवी! धैर्य से काम लो! हमने पाप किया; किन्तु प्रायश्चित भी यहीं करेंगे हम।" कंटक ने कहा था।

चंचला चकित होकर पति को देखने लगी। प्रायश्चित! किस तरह प्रायश्चित करना चाहता था वह!

☐

कंटक बोला था—"जिस तरह देवकी और वसुदेव को लेकर हमने हर सूचना सेनापति केशी तक पहुंचायी है, उसी तरह अब हर सूचना दबी रहेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि एक-न-एक दिन वसुहोम और अनुराधा मिलकर देवकी के किसी-न-किसी पुत्र की जीवन-रक्षा अवश्य करेंगे और हम उस रक्षा-प्रयत्न में मौन सहायक बनेंगे। यही होगा हमारा प्रायश्चित। यही होगा हमारा पुण्य।"

"किन्तु ऐसा अब तक तो किया नहीं है वसुहोम ने?" चंचला ने प्रश्न किया।

"उन्हें अनुकूल अवसर ही नहीं मिला होगा।" कंटक बोला था—"यह भी हो सकता है कि वह हमारे कारण ही वैसा न कर पा रहे हों।"

"तब कैसे होगा आपका प्रायश्चित?"

"उन्हें विश्वास दिलाना होगा देवी कि हम सभी को कंस की इस क्रूरता से घृणा है। हम सब उन्हीं के साथ हैं। उनके सहायक हैं। देवकी-वसुदेव का शुभ चाहते हैं और···और शायद···।" बोलते-बोलते थम गया था कंटक।

"चंचला व्यग्र भाव से पूछ बैठी थी—"और···और कहिए न प्रभु!"

"और अब हम भी चाहते हैं कि मथुरा में एक न्यायप्रिय राजा हो।

गणसंघीय पद्धति पुनर्जीवित हो। दुष्टता पूर्ण कृत्य करने वाले कायर कंस से मुक्ति मिले यादव गणसंघ को।" कंटक ने उत्तर दिया। बोलते-बोलते उसके जबड़ों में ही नहीं, स्वर में भी कठोरता पैदा हो गयी थी।

चंचला चुप हो गयी। पति की ओर देखती हुई। श्रद्धाविभोर। उससे भी कहीं अधिक प्रसन्न। सर्वमन पूर्ववत् सामने ही खेल रहा था। चंचला को लगा कि अब वह सुरक्षित है। प्रायश्चित की भावना ने उसे रक्षा-कवच दे दिया है। इस कवच के रहते निश्चय ही उनका कोई पाप कर्म काल बनकर उस पर आक्रमण नहीं कर सकेगा।

□

विस्मय और अविश्वास से अनुराधा द्वार पर ही थमी रह गयी थी। चंचला और कंटक का वार्तालाप स्पष्ट सुना था उसने। प्रसन्न हुई थी; किन्तु इस प्रसन्नता को ठहराव नहीं मिला। भला कैसे मिलता? कंटक और चंचला ने अब तक ऐसा कुछ भी तो नहीं किया, जिसके कारण उनके शब्दों या बातचीत पर विश्वास किया जा सके?

पर जो कुछ वह कह रहे थे, यदि वह सच है, तब निश्चय ही देवकी-वसुदेव के शुभ का समय आ गया। यह भी कहा जा सकता है कि विधाता ने उन दुष्टों के कठोर मन को चमत्कार की तरह तरल कर दिया है, जलवत्।

वह आयी थी, दोपहर का खाली समय काटने। चंचला एकमात्र नारी थी कारावास के अधिकारी वर्ग के परिवार में। जैसी भी हो, उसी के साथ समय बिताना होता था। मर्यादा की बात थी। इस अनुशासन और मर्यादा ने भी उसे एकांत से भर रखा था।

और एकांत दुःखकर। तरह-तरह के विचारों से भरा हुआ। देवकी यदि कारागृह का अन्धकार, कष्ट और एकांत की पीड़ा झेल रही हैं, तो अच्छे-खुले अधिकारी निवासगृह में रहने वाली अनुराधा उनसे भी कहीं अधिक एकांत, कष्ट और पीड़ा को झेल रही है। इस पीड़ा की व्याख्या नहीं की जा सकती। संभवतः ठीक तरह वर्णन करना भी कठिन है; किन्तु यह पीड़ादायक अवश्य है।

आश्चर्य की बात है, अनुराधा सोचती, मनुष्य सब कुछ पाकर भी इतना सूना, इतना दरिद्र, इतना कायर और इतना कष्टित हो सकता है?

पीड़ा का यह रूप कभी बिल्कुल अजाना था, अनदेखा। परिचय ही

नहीं हुआ था उससे; किन्तु समय-चक्र ने जिस तरह अनुराधा और उसके पति का जीवन घुमाया, उससे परिचित करवा दिया।

अनुराधा देहरी से हट पड़ी थी। बहुत दबी चाल में लौटी। कंटक और चंचला के बीच हुआ वार्तालाप पति तक पहुंचाने के लिए मन व्यग्र हो रहा था उसका। वही [illegible] य करेंगे कि सच क्या हो सकता है? कहां तक हो सकता है या केवल छल ही है?

□

वसुहोम यात्रा की तैयारी कर रहे थे। अनुराधा पति को देखती रही। मन हुआ, पूछे कि कहां जा रहे हैं, किन्तु उचित नहीं समझा। केवल बात चला दी। वह सब एक ही सांस में कह डाला था, जो चंचला और कंटक के बीच हुई बातों में सुनने को मिला था।

वसुहोम शान्त भाव से सुनते रहे। तुरन्त उत्तर नहीं दिया था कुछ। लगता था कि मन कहीं और, कुछ अलग ही विचारमंथन में व्यस्त है। अनुराधा ने प्रश्न किया था—"आपने कुछ कहा नहीं?"

"क्या कहूं?"

"यही कि क्या सच ही चंचला और कंटक में परिवर्तन हुआ है।"

"तुम जितना जानती हो या सुन आयी हो, उतना तो नहीं जानता; किन्तु इतना अवश्य अनुभव करता हूं कि अब उनका व्यवहार वैसा नहीं रह गया है।" वसुहोम ने उत्तर दिया। बहुत संक्षिप्त। एक तरह से सब कुछ स्वीकार कर, अस्वीकार भी कर दिया था।

अनुराधा ने प्रश्न पर प्रश्न कर दिया—"क्या सच ही ऐसे लोग बदल सकते हैं स्वामी! मन अब भी विश्वास करने को तैयार न था।

वसुहोम ने गहरा श्वास लिया, फिर थके स्वर में कहा—'अनु! क्रूरता बड़े-बड़े कठोर हृदयों को पिघला देती है, फिर महाराज कंस तो जैसे मनुष्य ही नहीं रह गये हैं। एकमात्र कंटक और चंचला ही क्यों, मुझे लगता है कि उनके बहुतेक समर्थकों की मनःस्थिति बहुत अच्छी नहीं रह गयी है।"

"तब सब कुछ सह क्यों रहे हैं वे?"

"इसलिए कि अन्य कोई साधन नहीं है।" वसुहोम ने उत्तर दिया था—"कंस की उग्र शक्ति का कोई प्रत्युत्तर किसी के पास नहीं है। [illegible] है; किन्तु बिखरा हुआ है। उसे एकजुट करने का कोई मार्ग

नहीं। ऐसा कोई बिन्दु नहो, जिसे देखकर या जिसका आश्रय पाकर यह असन्तोष संगठित हो जाए।" वसुहोम ने बात समाप्त कर दी। अनुराधा कुछ और पूछ-जान सके, इसके पहले ही वह बोले थे—"सुनो देवी! मैं महामंत्री से भेंट करने जा रहा हूं। कुछ आवश्यक कार्य है। संध्या समय संभवतः मुझे गुप्त रूप से कहीं जाना होगा।"

बहुत कुरेदन हुई थी मन में। पूछ ले—कहां, कौन-सी गुप्त जगह और क्या करने का विचार है उनका? किन्तु शब्द थाम लिये। नहीं, यह उचित नहीं होगा। ऐसा करके अनुराधा पति के एकाग्र मन को विभाजित नहीं करेगी।

वसुहोम तेजी से बाहर निकल गये। अनुराधा फिर-फिर कंटक और चंचला को लेकर विचार करने लगी। वसुहोम का यह कहना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था कि अब उनका व्यवहार वैसा नहीं रह गया है। मन ने कहा था—निश्चय ही वे बदल चुके हैं। कंस की पाशविकता ने उन्हें बदल दिया है।

कह रहे थे कि प्रायश्चित करेंगे; पर जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित किस तरह कर पायेंगे? अनुराधा ने सोचा, लगा कि उत्तर नहीं है उसके पास या समझ ही नहीं पा रही है।



वसुहोम ने कारागार का द्वार खुलवाया, फिर सीधे वसुदेव के सामने जा खड़े हुए। इधर कुछ दिनों से वह बहुत सहज रहने लगे थे। लगता था कि पाशविकता की क्रमबद्धता ने उन्हें जड़भाव से सब कुछ सहने का आदी बना दिया है। निस्सन्देह जड़ भाव ही था वह। न होता, तो क्या अब अश्रुहीन होकर यांत्रिक ढंग से हर जनमने वाले शिशु को लेकर स्वयं ही कंस के सामने जा पहुंचते? अपने हर पुत्र का वध उन्होंने स्वयं देखा था। न रोये थे, न ही करुणा मन में आयी। लगता था कि पत्थर हो चुके हैं बिलकुल। अधिकतर चुप ही रहा करते थे, शान्त।

किन्तु इस बार वसुहोम को लगा था कि जैसे-जैसे देवकी के आठवें गर्भ की परिपक्वता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे वह आकुल होने लगे हैं। क्यों? विचार किया था। स्मरण हो आया था कि कंस के काल-रूप में देवकी की यह आठवीं सन्तति ही उत्पन्न होगी और संभवतः वसुदेव भी सोचने लगे थे कि किस तरह उसे बचा सकेंगे? कैसे रक्षा कर पायेंगे उसकी?

और वसुहोम को सहसा योजना सूझी थी। योजना सूझी थी कि चमत्कार हुआ था। चमत्कार ही कहा जाना उचित होगा उसे। वसुहोम को सुबह सवेरे नंद गोप के यहां से एक गुप्तचर ने आकर बतलाया था—"अधीक्षक महोदय ! वसुदेव देवकी को लेकर नंद गोप सदा ही चिन्तित रहते हैं। पूछते रहते हैं कि कैसे हैं वे ? कैसी हैं उनकी भार्या ?"

वसुहोम ने उत्तर में कहा था—"क्या तुम नहीं जानते गुप्तचर ! कैसा क्या कुछ है ? माता देवकी एक के बाद एक सन्तान खोती हुई लगभग मृतप्राय हो चुकी हैं। जीवन के नाम पर वह केवल एक चलती-फिरती आकृति भर हैं। शेष कुछ नहीं और महामंत्री की मन:स्थिति ऐसी है, जैसे शिला हो चुके हों। न हर्ष उन्हें आह्लादित करता है, न कष्ट उन्हें पीड़ित कर पाता है। कुल मिलाकर यही समाचार है, जो तुम गोकुल पहुंचकर नंद गोप को दे देना। इसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है कहने को।"

वसुहोम का विचार था कि गुप्तचर टल जायेगा। वसुहोम की पीड़ा-जनक बातें उसे टाल देंगी। निराशा के उसी सागर में डुबो देंगी, जिसमें वसुहोम स्वयं डूब चुके थे, पर आश्चर्य हुआ। वह खड़ा रहा था। कहा—"कंस का काल सुनते हैं माता देवकी की कोख में आ चुका है देव।"

"यदि तुम उसे सत्य मानो, तो आ चुका है; पर उस काल का अर्थ ही क्या जो जन्मने के साथ ही संभवतः मृत्युमुख में चला जायेगा ?" वसु-होम बिलकुल निराश थे। पराजित।

"नहीं देव !" गुप्तचर बोला था। इधर-उधर सावधानी से देखा, फिर जैसे दृष्टि में सन्नाटे की नाप-जोख की, फुसफुसाकर कहा—"एक समाचार लाया हूं। इसे आप संयोग कहें अथवा चमत्कार; किन्तु इस समाचार से देवकी के आठवें सुत की रक्षा की जा सकती है।"

"वह क्या ?" वसुहोम चकित भाव से देखने लगे थे उसे।

"नंद गोप की भार्या भी गर्भवती हैं।" गुप्तचर ने फुसफुसाकर कहा था, फिर वसुहोम की ओर इस तरह देखने लगा था, जैसे शेष सब कुछ सोचना-समझना उनका दायित्व हो। बस, संकेत भर किया था उन्हें। न भी करता, तो चल जाता। वह बोला था—"और आर्य ! आप तो जानते ही हैं कि गोकुल के गोप बाबा महामंत्री के गहरे मित्र हैं।"

वसुहोम चुप रह गये थे। उसे देखते हुए। वह मुस्करा रहा था, कुछ पलों बाद वह स्वयं भी मुस्कराने लगे थे—"हां, संभवतः इसे चमत्कार

ही कहना चाहिए।" उन्होंने बुदबुदाकर उत्तर दिया था।

और उस उत्तर के बाद बहुत कुछ सोचने-समझने पर आ पहुंचे थे वहां, जहां मस्तिष्क ने आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय ढंग से योजनाएं गढ़नी शुरू कर दी थीं। किस तरह क्या हो सकता है? वह सोच रहे थे। लगता था कि जितना-जितना सोचते हैं, उतने-उतने का सिरा बैठता चला जाता है। कहीं कुछ अधूरा नहीं छूट रहा। कहीं कुछ ऐसा नहीं, जो निराशा का कारण बने।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था उनके साथ। देवकी के सात सुत जा चुके। न कभी ऐसा संयोग हुआ, न समयानुसार सोच-विचार मे क्रमबद्धता आई। निश्चय ही यह सब विधि का किया हुआ है, चमत्कार!

कंस का काल-समय आ पहुंचा। उससे पहले काल-जन्म! मन में जाने क्यो यह विश्वास सघन हो गया था कि आगे जो कुछ करना है, वह सब भी अनुकूलता के साथ होता जायेगा। गोकुल प्रस्थान की तैयारी कर दी थी। गुप्तचर से कहा था—"नन्द गोप को समाचार देना, हम शीघ्र ही उनसे भेंट करने आ रहे हैं। संभवतः आज रात्रि ही गोकुल पहुचें।"

गुप्तचर समझ गया। वही है, जो उसने भी समझा था। चल पड़ा।



और वसुहोम तुरन्त तैयारी करके चले आये थे वसुदेव के पास। उनके सामने खड़े थे। उनके शिलावत् व्यक्तित्व को तोड़ते हुए। शब्द इस तरह बोलने होंगे कि उनका पथरीलापन रिसे। वह भी कुछ विचारें, वैसा ही विचारें, जैसा वसुहोम ने विचारा है। विश्वास था कि यह हो सकेगा। जब सभी कुछ अनुकूल होता चला जा रहा हो, तब वह केवल संयोग नहीं रह जाता। निश्चित बन जाता है। केवल विधि का लेख। बहुतेक लोग उसे भाग्य कहते हैं, बहुतेक की दृष्टि में वह चमत्कार।

वसुहोम ने हाथ जोड़े, निवेदन किया था—"मन्त्रिश्रेष्ठ! एक प्रस्ताव लेकर आया हूं। यदि आज्ञा दें तो प्रस्तुत करू?"

उन्होंने केवल देखा, फिर दृष्टि मे ही स्वीकृति दी।

"अभी-अभी मुझे ज्ञात हुआ है कि गोकुल के नंद गोप की भार्या यशोदा भी गर्भवती हैं।" वसुहोम ने कुछ हिलकती आवाज में कहा था। हिलकन इसलिए आ गई थी कि जो कुछ वह कहने वाले थे, उसे सुनकर कहीं भावुक वसुदेव सहसा उन पर उग्र न हो जायें। उन्हें धिक्कृत न करने लगें।

वसुदेव ने पथरीले स्वर में प्रश्न किया था—"प्रसन्नता की बात है वसुहोम! किन्तु उससे तुम्हारे प्रस्ताव का क्या सम्बन्ध है?"

"है, श्रीमन्! बहुत बड़ा सम्बन्ध है।" वसुहोम ने स्वर को और सहज किया। गति कुछ धीमी की। सतर्कता से द्वार की ओर देखा। प्रहरी नहीं थे वहां। संभवतः वसुहोम को आया पाकर वह निश्चिन्त भाव से यहां-वहां हो गए थे। वसुहोम ने कहा था—"मेरा प्रस्ताव यह है मन्त्रिवर कि माता देवकी के गर्भस्थ शिशु का जब जन्म हो, तब उसे यशोदासुत से परिवर्तित कर दिया जाए।" शब्द पूरे करके वसुहोम जैसे तैयार हो चुका था कि महामन्त्री वसुदेव का क्रोध, प्रतिक्रिया किस सीमा तक जा सकती है, उसे सहेगा।

वसुदेव के जबड़े भिच गए थे। आंखें रक्ताभ हो उठीं; किन्तु उन्होंने स्वयं को संयत किया था। कुछ गुर्राहट के साथ कहा—'यह क्या अनर्थक बक रहे हो तुम? क्या जानते नहीं कि दुर्मति कंस परिवर्तित बालक का वध भी अवश्य करेगा?"

"जानता हूं आर्य! किन्तु यही एकमात्र मार्ग मुझे दीखता है, जिससे देवकी सुत की रक्षा की जा सकती है।" वसुहोम ने जैसे गिड़गिड़ाकर कहा।

"क्या बकते हो तुम?" वसुदेव लगभग चीख पड़े थे। वसुहोम ने घबराकर पुन. द्वार की ओर देखा, कहीं प्रहरी न आ पहुंचें; पर शान्त हुआ। द्वार पर वही सन्नाटा बिखरा हुआ था। वसुदेव बोले थे—"धिक्कार है तुम पर! यह घिनौना विचार तुम्हारे मस्तिष्क मे आया ही कैसे? क्या क्रूर राजा का अन्न खाते-खाते तुम भी मतिभ्रष्ट होते जा रहे हो वसुहोम! क्या तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है? नंद गोप हमारे शुभैषी है, मित्र हैं; पर इसका अर्थ यह तो नही कि हम उन्हें अपने निजी स्वार्थ का साधन बना लें? तुम्हें यह पापबुद्धि मिली कैसे?"

"उत्तेजित न हों प्रभु!" वसुहोम ने शान्त स्वर में कहा था—"जानता हूं कि विचार और सम्पूर्ण योजना भी बहुत क्रूरतापूर्ण है, किन्तु आप जैसे बुद्धिमान से तर्कातर्क करने को बाध्य हुआ हूं। मुझे क्षमा कर दें और मेरी बातों पर विचार करें।"

वसुहोम के स्वर मे इतनी सरलता, इतनी कातरता और इतना अनुशासन था कि वसुदेव चुप होने के लिए बाध्य हो गये थे।

वसुहोम ने कहा था—"सुनें मन्त्रिश्रेष्ठ ! तनिक शांत होकर सुनें !" फिर वह फुसफुसाने लगा था—"देवकी सुत की रक्षा माता देवकी के लिए नहीं, मथुरा और यादव गणसंघ के शुभार्थ आवश्यक है। यह चमत्कार ही है कि संयोग कैसा बना है, जैसा सात शिशुओं के वध-पूर्व कभी नहीं बना था। संभवतः नियति यही चाहती है प्रभु ! फिर आप अपने पुत्र की तरह देवकी के पुत्र को लेकर विचार न करें। आप विचारें कि वह गणसंघ के शुभ में एक भविष्य का जन्म है। इस एक बाला की रक्षार्थ शूरसेन जनपद और मथुरा के असंख्य लोगों की बलि दे देना भी अधर्म नहीं होगा, फिर धर्माधर्म का लेखाजोखा सम्पूर्ण के शुभ में होता है बुद्धिवर ! एक की दृष्टि से नहीं। तनिक शांत होकर विचार करें।"

वसुदेव चुप हो रहे। लगा था कि वसुहोम के शब्दों ने उन पर वांछित प्रभाव किया है, फिर उसे स्वयं आश्चर्य होने लगा था कि इतनी तर्कबुद्धि कहां से जनन आई उसके भीतर कि वह मथुरा गणसंघ के सर्वाधिक बुद्धि-श्रेष्ठ व्यक्ति से भी बात कर पा रहा है। एक तरह से उपदेश ही कर रहा है? लगा था कि शब्द उसके नहीं थे। वह केवल माध्यम बना था उनका। केवल वाहक ! ये शब्द किसी अज्ञात ने बुलवाये थे उससे और वही था, जो इस क्षण साहस बना हुआ उसे वसुदेव जैसे प्रभावी व्यक्तित्व के आगे टिकाये हुए था।

"किन्तु···किन्तु वसुहोम ! यह सब घृणित है? करना तो दूर, इसके विचारमात्र से मन में वितृष्णा हो रही है हमें। क्या अपने पुत्र की रक्षार्थ हम मित्र की सन्तान को बलि चढ़ा देंगे?" वसुदेव लड़खड़ाते हुए-से हुटे थे। वसुहोम ने स्पष्ट देखा था कि उनका पथरीलापन सहसा रिसन में बदलने लगा है। भावुक होने लगे हैं वह। इसी भावुकता के बीच से उसे अपने प्रस्ताव पर स्वीकृति लेनी थी। आगे कुछ कह सकें, इसके पहले ही बोल पड़ा था वह—"मैं पुनः स्मरण दिलाऊं प्रभु ! यह जन्म आपके पुत्र का नहीं, मथुरा के उद्धारक का है। कंस के क्रूर कर्मों से गणसंघ को त्राण दिलाने वाले ईश्वर का है। आप इस दृष्टि से विचार करें।"

"और···और तुम क्या समझते हो नंद गोप यह स्वीकार लेंगे?" सहसा पुनः वसुदेव व्यग्र हो गये थे—"अपनी संतति की बलि···ओह ! विचार ही घृणित है। यहां तक कि इसकी कल्पना भी। भला कोई पिता कैसे अपनी संतान को जानबूझकर खग का आहार बनाना चाहेगा?"

"वह आपके मित्र हैं।" वसुहोम ने तर्क किया था—"उससे भी आगे वह मथुरा और यादव गणसंघ के प्रति समर्पित पुरुष हैं। मुझे ज्ञात है कि वह शान्त स्वभाव, बुद्धिमान और संयमी हैं! मेरा विश्वास है कि वह प्रस्ताव अस्वीकारेंगे नहीं।"

"पर वसुहोम•••!" इस बार तर्कातर्क से शेष हो रहे थे वसुदेव।

वसुहोम ने अवसर नहीं दिया। कहा था—"मुझे आज्ञा दें प्रभु! जाने क्यों मुझे लग रहा है कि यह सब मैं नहीं नियति आयोजित कर रही है।"

वसुदेव ने गहरा श्वांस लिया, चुप हो गए। इस चुप में ही स्वीकृति मान ली थी वसुहोम ने। यह चुप ही उनका स्वीकार भी था। तीव्रगति से वह मुड़ा और द्वार से बाहर निकल गया। अचरज हुआ था उसे। प्रहरी कहां हैं? तभी प्रहरियों को उसने दूर से दौड़कर आते हुए देखा। अरे, कहां चले गए थे वे?

पूछ सकें, इसके पूर्व ही प्रहरियो मे मे एक ने कहा था—"क्षमा करें, श्रीमन्! देर पूर्व उपाधीक्षक के पुत्र के साथ एक दुर्घटना घट गई। इसी उत्तेजना मे हम लोग अपना स्थान छोड़ गए थे।"

दुर्घटना! वसुहोम बड़बड़ाये।

"हां महोदय• •!" प्रहरी ने थूक का घूट निगलते हुए कहा था—"बालक सर्वमन खेल रहा था कारागार के प्रांगण मे। पता नही कैसे उस पर वृक्ष की एक शाखा आ गिरी।"

"कही उसे चोट तो नही आई?" घबराकर वसुहोम ने पूछा।

"यह तो ज्ञात नहीं, चिकित्सक आ पहुंचा है। बालक बेसुध है महाराज!" दूसरे प्रहरी ने उत्तर दिया।

"ओह!" वसुहोम ने कहा और आगे बढ़ गए। मन रह-रह कर कहे जा रहा था—"यह सब नियतिचक्र ही है। देवकसुता के पुत्रों की बलि में जो दुष्ट सहयोगी हुए थे, अब सम्भवत: स्वयं पुत्र-पीड़ा झेलकर पाप प्रायश्चित करेंगे।

किन्तु औपचारिकता के नाते ही सही, उन्हें कंटक के निवास पर जाना था। उसी ओर गये। भीतर पहुंचते ही पाया था कि चंचला की हिलकियां बंधी हुई है और कंटक पथरीली दृष्टि से बालक को देखे जा रहा है। बालक मर चुका था। वसुहोम ने आगे बढ़कर कंटक के कंधे पर हाथ रख दिया था। कटक ने उन्हे देखा, सिसक-सिसककर रो पड़ा।



गोप नंद ! बहुत सुना था उन्हें लेकर; पर बहुत जाना नहीं था। जितना सुना, उसके नाते इतना जानते थे कि वह धीर-गंभीर आदमी हैं। उससे भी अधिक यह कि मथुरा के महाराज उग्रसेन को अपदस्थ करना भी उन्हें नहीं भाया था। न ही वसुदेव-देवकी को कारागृह में बन्दी बनाना।

तिस पर वसुदेव-देवकी की सन्तानों के हत किए जाने की घटनाओं ने तो निश्चय ही बहुत व्याकुल आक्रांत कर रखा होगा उन्हें। सारी राह यही कुछ सोचते-समझते गए थे। बस, उलझन एक ही थी कि वसुहोम देवकी की संतान को बचाने के लिए नंद गोप से उनकी संतान की बलि किस तरह मांगेंगे ? कहां से आयेगा उतना आत्मबल ? वैसी क्रूर शक्ति से पूर्ण इच्छा को अभिव्यक्त कर पाने के शब्द ? लगता था कि बहुत कठिनाई होगी; किन्तु फिर भी न जाने कौन-सी आशा-विश्वास लेकर चल पड़े थे गोकुल की ओर।

जब चले, तब सांझ थी, अब रात में बदल चुकी थी। रह-रह कर एक भय भी सता रहा था उन्हें राजाज्ञा लिए बिना चले आये हैं। इस बीच यदि महाराज कंस का बुलावा आ पहुंचा, तो क्या होगा वहां ? तिस पर कंटक और चंचला पुत्र के निधन की पीड़ा से व्याकुल हैं। अनुराधा शब्दजाल रचेगी तो सही; किन्तु कितनी कहां तक सफल हो सकेगी, कहा नहीं जा सकता। कंस बहुत दूरदर्शी हैं। उससे भी अधिक शंकालु स्वभाव। न जाने क्या कुछ, कहां तक सोच बैठें ? फिर दुर्बुद्धि सेनापति सदा उनके साथ रहता है। यदा कदा यदि सहज बुद्धि सोच भी रहे हों, तो मतिभ्रष्ट कर देता है उनको।

पल-पल आशंका और भय से भरे गोकुल की ओर बढ़ गए थे। जब पहुंचे, तब भी चोरों की तरह। नहीं चाहते थे कि कोई पहचाने। यह भी नहीं चाहते थे कि परिचय दें। गुप्तचर को एक निश्चित स्थान बतला दिया था उन्होंने; पर चलते समय कटक और चंचला के दुख की औपचारिकता निबाहते हुए देर हो गई। ज्ञात नहीं, अब वह वहां होगा या नहीं। प्रतीक्षावधि से ऊबकर कहीं जा ही न चुका हो ?

उस स्थिति में बहुत कठिनाई होगी। यमुना पार पहुंचकर सोचा था वसुहोम ने; किन्तु चलते रहे। रह-रह कर ईश्वर से प्रार्थना करते, वह यहीं मिल जाए तो अच्छा हो। नन्द गोप का घर ढूंढने में किसी से भेंट नहीं

करना चाहते थे वह। पूछते, बात चलती, परिचय होता। असत्य कहते, तो एक आशंका थी। क्या मालूम कि वह उन्हें जानता ही हो। मथुरा के कारागृह अधीक्षक का पद छोटा तो होता नहीं। बहुत से लोग जानते हैं उसे।

पर एक और चमत्कार हुआ। गुप्तचर नियत स्थान पर सोते हुए मिल गया था। वसुहोम ने उसे जगाया। वह हड़बड़ा कर उठा और चकित हो गया। कहा—"*मैं तो आपके आगमन की आशा ही छोड़ चुका था श्रीमन्!* पर जाने कैसे नींद आ गई। घर लौट जाने का विचार कर रहा था; पर सो रहा और अब आपको पा रहा हूं।"

वसुहोम को लगा कि फिर संयोग हुआ है। संयोग नहीं, चमत्कार!

II

नन्द बाबा के घर पहुंचे। अर्धरात्रि में जगाया था उन्हें। वह भी कम चमत्कृत नहीं हुए थे वसुहोम को सामने पाकर। कहा था—"तुम्हें जानता हूं मित्र! वसुदेव ने अनेक बार तुम्हें लेकर चर्चा की थी। यह भी ज्ञात है कि तुम इन दिनों कारागार अधीक्षक के पद पर हो।"

वसुहोम प्रसन्न हुआ। नन्द गोप के स्वर, व्यवहार और दृष्टि में सरलता थी। निश्चय ही उनसे वांछित को प्राप्त कर लेगा वह। उसने सोचा। नंद बोले—"आओ, स्वागत है।"

वसुहोम और गुप्तचर आगे बढ़े। यशोदा शयनकक्ष में थी। गोप प्रमुख का घर सुन्दर था। सज्जित। नंद ने उन दोनों को आसन दिए, फिर बैठे रहे, पूछा—"कैसे कष्ट किया वसुहोम! देवक सुता और मित्र वसुदेव कुशल से तो हैं? यों जानता हूं कि वह मृत्यु से भी अधिक पीड़ा झेल रहे हैं। मैं इस समय उन्हीं को लेकर चिन्तित हूं।"

वसुहोम ने सब कुछ कह सुनाया। नंद गोप ने बहुत ध्यान से सुना, फिर गहरा श्वांस लेकर बोले थे—"मित्र वसुदेव ने मातृभूमि के लिए निरंतर बलिदान किये हैं। वह पुण्यवान हैं। उसके अंशमात्र का भागीदार हो पाता, तो मैं सुखी होता।"

वसुहोम स्तब्ध-सा उन्हें देखता रहा। नंद गोप के स्वर में जैसे सम्मोहन था। दृष्टि में आश्चर्यजनक शक्तिज्योति।

"मैं···मैं एक निवेदन लेकर उपस्थित हुआ था गोप बाबा!" वसुहोम ने साहस जुटाया। जैसे-तैसे स्वर को संयत किये रखा।

वह मुस्कराये। ऐसी मुस्कान जैसे अबोध शिशु के होठों पर होती है।

पूछा, "निस्संकोच कहो, क्या कहना चाहते हो ?"

"मैं महामन्त्री वसुदेव के शुभार्थ''''।"

"उनके शुभार्थ यदि गणसंघ के असंख्य लोग अपना बलिदान कर सकें, तो वह भी कम ही होगा वत्स !" गोप बाबा ने बात छीन ली थी—"बोलो, ऐसा क्या है, जो मैं उनके शुभार्थ नहीं कर सकता ?"

"माता देवकी आठवीं बार गर्भवती हुई हैं, गोप बाबा !" बड़ी कठिनाई और सकोच के साथ वसुहोम कह पाया था। आगे भी कहता; किन्तु नंद गोप ने बात छीन ली। बोले—"विचित्र संयोग है। देवी यशोदा भी गर्भवती हैं और तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी वसुहोम कि उनके गर्भ का भी आठवां माह चल रहा है। मुझे ज्ञात है कि देवकी के गर्भ का भी आठवां माह ही है।"

वसुहोम को लगा था कि जो कुछ सोचा, समझा है, कहना चाहता है, वह सब मन-मस्तिष्क से कहीं दूर विलीन हो चुका है। वह खाली है और केवल रिक्त बुद्धि और रिक्त मन से उनकी ओर विस्मयपूर्वक देखे जा रहा है।

"तुम जो प्रस्ताव लाये हो मित्र ! वह बाद में सुनूंगा; किन्तु उससे पूर्व मेरा एक प्रस्ताव है, सुनोगे ?" नंद गोप ने कहा था।

"क्या गोप बाबा !" वसुहोम ने श्रद्धा से प्रश्न किया।

"तुम्हारी सहायता-सहयोग मिला, तो मित्र वसुदेव और देवकी की इस आठवीं संतान की रक्षा की जा सकती है वसुहोम !" नंद बोले थे—"यशोदा की संतान से यदि देवकी की संतान को यथासमय बदल दिया गया, तो वसुदेव के पुत्र की रक्षा हो जाएगी। जाने क्यों बहुत बार यही विचार मेरे मन में आता रहा है और आज तुमसे कह भी रहा हूं।"

आश्चर्य या संयोग ! कुछ भी नहीं। केवल चमत्कार ! निस्संदेह देवकी के गर्भ में आया यह आठवां जीव मनुष्य नहीं है, मनुष्येत्तर शक्ति वाला है।

हकबकाया-सा चुप रह गया था वसुहोम। अपने ही शब्दों को अपने होंठों पर आने के पूर्व, जिस तरह उसने नंद बाबा के होंठों से झरते सुना था, उसने हतप्रभ कर दिया था उसे।

नंद पूछ रहे थे—"बोलो, वसुहोम ! करोगे सहायता ?"

वसुहोम की आखें भर आयी थीं। गला भी भर आया। कहा था—"कैसी विस्मय की बात है नंद बाबा ! यही कुछ मैं निवेदन करने आया था।"

नंद गोप भी चकित हुए। संभवतः वह भी सोच रहे थे कि यह सब

जिस तरह घटित हो रहा है, क्या विश्वसनीय है ?

एक ओर शान्त भाव से बैठा गुप्तचर उन दोनों को ही इस तरह देखे जा रहा था, जैसे किसी अद्भुत के दर्शन कर रहा हो। कुछ देर बाद वसुहोम, गुप्तचर को लेकर जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से विदा हो गया। नंद गोप ने द्वार बन्द कर लिए।

वह शयन-कक्ष मे आकर लेट रहे। लगता था कि मन हलका हो गया है, फिर यह भी लग रहा था कि यह योजना क्यों कर, कैसे उनके मस्तिष्क में आयी ? पहले तो कभी विचार नहीं किया था उन्होंने ?

आंखें मूंदी। गहरा प्रकाश अनुभव हुआ। ऐसा प्रकाश जो मन-शरीर, सभी को प्रकाशित कर रहा हो। आश्चर्य था कि संतति-बलि का निर्णय भी सुख दे रहा था।



कंटक, चंचला और अनुराधा तीनों ही स्तब्ध हो गए थे। मुख्य द्वारपाल ने आकर सूचना दी थी—"श्रीमन् ! सेनापति केशी आ रहे हैं।"

"इस समय ? अर्धरात्रि को ?" विस्मय, आश्चर्य और अविश्वास से कहीं अधिक चिन्तातुर होकर अनुराधा ने प्रश्न किया था। ज्ञात था कि वसुहोम किसी गुप्त, अजाने कार्य से कारागृह के बाहर गये हैं और सेनापति आकर उन्हें ही पूछेंगे। बुरी तरह घबरा गई थी।

सर्वमन के अंतिम संस्कार की व्यवस्था की जा रही थी। सभी शोकाकुल थे, सभी दुखी। कंटक और चचला तो जैसे बिल्कुल ही असहज, असन्तुलित हो गए थे। सर्वमन उनकी इकलौती सन्तान था।

द्वारपाल सूचना देकर चला गया था। अनुराधा के पैरों में कम्पन हो रहा था—"हे, भगवान् ! दुष्ट केशी वसुहोम की अनुपस्थिति पाकर न जाने किस संशय में घिर जाये, क्या कुछ कह डाले महाराज कंस से···? और कंस शंका मात्र से क्या कुछ नहीं कर डालेंगे वसुहोम का ?"

अज्ञात आशंका पुतलियों पर भय का अंधकार बनकर उतर आई थी। कंटक उठा, सपाट स्वर में प्रश्न किया था उसने—"देवी ! कारागार अधीक्षक कहां हैं ?"

"वह···वह किसी व्यक्तिगत कार्यवश चले गए हैं।" अनुराधा जैसे समूचा साहस बटोरकर बोल सकी थी।

कंटक ने अनुराधा को देखा, फिर गहरा श्वास लेकर आश्चर्यजनक

संयम से काम लिया। सतर्कतापूर्वक खड़ा रहा।

केशी आ पहुंचे थे। कठोर दृष्टि, उससे भी कहीं अधिक वज्रदेह। आकर सहानुभूति से बोले थे—"खेद हुआ कंटक! द्वार पर ही मुझे तुम्हारे पुत्र के निधन का समाचार ज्ञात हो गया था।"

"सब भाग्यायोजित है सेनापति!" कंटक ने संयत स्वर में उत्तर दिया था, फिर कहा—"आज्ञा करें, किसलिए अर्धरात्रि के समय कष्ट किया?"

"यों ही, इधर से निकल रहे थे हम। विचार किया कारागृह अधीक्षक से ही भेंट करते जायें।" केशी ने इधर-उधर दृष्टि घुमाई। एक ओर चंचला के साथ भयभीत खड़ी अनुराधा की ओर देखा, फिर पूछा—"कहां है वह?"

"कौन···वसुहोम?" कंटक ने पूछा।

"हां।" केशी की दृष्टि में संशय था।

कंटक ने विनम्रतापूर्वक कहा—"वह मेरे वृद्ध माता-पिता को साथ लेने चले गए हैं प्रभु! इस दुर्घटना ने उन्हें भी बहुत आहत किया है।"

"ओह!" केशी ने कहा। समाधान हो गया। अनुराधा ने स्पष्ट देखा था कि उसकी आखों का सन्देह कंटक की ओर से उत्तर पाकर निश्चिन्तता में बदल गया है। चकित हुई थी वह। कंटक ने ऐसा झूठ क्यों बोला?

पर कुछ अधिक सोच सके, इसके पूर्व ही तीव्रगति से केशी मुड़े। पुनः कहा था—"इस अवसर पर मथुराधिपति की ओर से भी संवेदना स्वीकार करो, कंटक! निश्चय ही यह दुखद समाचार उन्हें बहुत कष्ट देगा।"

"मैं जानता हूं, सेनापति महोदय!" केशी के सामने नतशिर खड़ा हो गया था कंटक।

केशी जिस गति से आये थे, उसी गति से चले भी गए।

मर्वमन की अन्त्येष्टि की तैयारियां होने लगी थीं। सब ओर सन्नाटा था और उस सन्नाटे में अनुराधा रह-रह कर कंटक के हृदय-परिवर्तन पर विचार कर रही थी वही था, जिसके असत्य संभाषण ने वसुहोम को मृत्यु-मुख मे जाते-जाते बचा लिया था।



वसुहोम लौटे, उस समय तक भोर होने लगी थी। अनुराधा सारी रात सो नहीं सकी। रह-रह कर कंटक और चंचला को लेकर ही सोचती

पाप-बोध ने ही उन्हें परिवर्तित कर दिया था। इस सीमा तक परिवर्तित कि वसुहोम के अशुभ हेतु आकर भी उन्होंने उसका शुभ ही किया था।

वसुहोम ने लौटने पर पत्नी से सब कुछ सुना। विश्वास हो गया कि कंटक और चंचला बदल चुके हैं। निश्चय किया था कि उनके प्रति आभार व्यक्त करेंगे। सुबह के साथ ही जा पहुंचे थे उनके निवास पर।

वे सारी रात सो नहीं सके थे। सर्वमन को खो देने की पीड़ा ने एक रात्रि में ही जैसे वृद्ध कर दिया था दोनों को।

अनुराधा और वसुहोम चुपचाप बैठ रहे, फिर अनुराधा बोली थी चंचला से—"बहिन। धैर्य रखो। ईश्वरेच्छा के आगे मनुष्य अवश है। यह सब विधाता का दिया जानकर ही स्वीकारो। अन्य कोई राह भी नहीं है मनुष्य के सामने!"

चंचला सहसा ही बिलख पड़ी। अनुराधा की गोद में एक छोटे बच्चे की तरह ढुलक गई थी। सिसकते हुए कहा था उसने—"मैं जानती थी अनु बहिन! यह होगा। एक न एक दिन, यह होना ही था। दूसरे के सन्तति-वध में अंश भर ही सही; पर हमने सहयोग का पाप जो किया था, यह दंड मिलना ही था हमें।"

वसुहोम ने कंटक से कहा था—'जो हुआ, वह हुआ। अब धीरज से काम लो, कंटक। तुम पुरुष हो मित्र! तुम्हें ही सब कुछ झेलना-सहेजना होगा।'

कंटक शान्त रहा।

चंचला सिसकती आ रही थी। कंटक बोला था—'देवी! हमें हमारे किये का दंड मिल चुका है। हम ऋणमुक्त हुए। अब ईश्वर से प्रार्थना करो, वह हमारा शुभ करें। हमें सन्तति लाभ हो। एक नया सर्वमन तुम्हें मिले।"

"मेरी आत्मा कहती है कंटक भईया! तुम्हारा सर्वमन तुम्हारे पास अवश्य लौट आयेगा, अवश्य।" अनुराधा बोली तो दोनों ही चकित होकर उसे देखने लगे थे। अनुराधा की आंखों में आंसू छलछला रहे थे—"हां, मैं सत्य कह रही हूं चंचला। विधाता मनुष्य को दंडित करता है। पाप-मुक्ति के साथ-साथ पाप की अनुभूति करवाने के लिए। वह तुम कर चुके। अब तुम्हारा सर्वमन तुम्हारे पास अवश्य लौटेगा। यह मेरा आत्म-स्वर है।"

दोनों ने ही अनुभव किया था अनुराधा और वसुहोम की दृष्टि, स्वर और मन का विश्वास उनकी अपनी दृष्टि, स्वर और मन बन गया है। निश्चय ही उन पुण्यात्मा दम्पति का वरदान अवश्य फलेगा उन्हें, अवश्य। उन्होंने सोचा।



सब कुछ ईश्वरायोजित। कुछ भी ऐसा नहीं, जिसे संयोग कहा जा सके। यशोदा का गर्भकाल, देवकी का गर्भकाल, उनकी आठवीं सन्तति, नंद का प्रस्ताव और कंटक तथा चंचला का हृदय-परिवर्तन। सब ईश्वर आयोजित! केवल चमत्कार! केवल दैवीय।

पर आगे, क्या कुछ किस तरह होगा, सूझ नहीं रहा था। जैसे-जैसे वसुहोम सोचते, माथा गुत्थियों से भरता जाता।

प्रकृति अलग ही रंग बदल रही थी। रोज-रोज कुछ ऐसा मौसम होता, जिसके क्षण-क्षण बदलाव में कोई तर्क नहीं सूझता। नंद गोप से निरन्तर सम्पर्क बनाये हुए थे वसुहोम। गुप्तचर आये दिन सूचनाएं लाता-ले जाता।

फिर आयी थी वह रात्रि! सन्ध्या समय ही वसुहोम को सूचना मिली थी अनुराधा से—"देवकमुकता गर्भस्थ शिशु को जन्म देने वाली हैं···। गर्भपीड़ा होने लगी है उन्हें।"

वसुहोम ने पूछा—"उनके पास कौन है?"

"चंचला।" अनुराधा ने उत्तर दिया। वसुहोम आश्वस्त हो गया था; पर चिन्तित भी। ऐसे समय भला किस तरह यशोदा की संतान से परिवर्तन किया जा सकेगा? फिर यह भी तो आवश्यक नहीं कि यशोदा भी आज ही गर्भस्थ सन्तति को जन्म दें। कल तक की सूचना उनके पास थी। यशोदा ने अब तक संतति को जन्म नहीं दिया था।

किन्तु मन कहता, घबरा मत वसुहोम! यदि यह सब ईश्वरीय ही है, तो पुनः चमत्कार होगा। निस्सन्देह होगा; किन्तु यह चमत्कार? मन आस्था से डगमगा उठता था। भला यशोदा और देवकी एक ही समय पर किस तरह संततियों को जनम सकती हैं···? और समय-भेद निश्चित रूप से वसुहोम और नंद की योजनाओं को गड़बड़ में डाल देगा।

अनुराधा समाचार देकर जा चुकी थी। वसुहोम कक्ष में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। रह-रह कर दृष्टि खिड़कियों के

बिजली पर जा पड़ती। सहसा ही वायु आश्चर्यजनक रूप से गतिशील होने लगी थी। उसके साथ-साथ काली घटाएं उमड़ पड़ी थीं आकाश में।

वसुहोम रह-रहकर चौंक जाते। मन आशंका और भय से कांप उठता भला ऐसे प्राकृतिक वातावरण में योजना क्रियान्वित कर पाना सहज होगा क्या? कुछ पल हथेलियां मलते रहे थे वे, फिर होंठो पर जीभ फिराने लगे, फिर भयभीत भाव से आकाश की ओर देखने लगे। बदन थरथरा रहा था। हवाएं आश्चर्यजनक रूप से ठंडी हो गयी थी। गति ऐसी असामान्य जैसे आंधी में बदलती जा रही हो। बादलों का गर्जन धीमे-धीमे डरावना होता जा रहा था। कारागार की प्रकाश-व्यवस्था इन परिवर्तनों के सामने बहुत देर ठहरने वाली नहीं थी।

वसुहोम की बेचैनी और बढ़ गयी। उसी के साथ प्राकृतिक उत्पात बढ़ने लगे।



वसुहोम ने किस तरह, कितना समय काटा होगा, अनुमान नहीं। अनुमान करने का विचार भी नहीं आया था मन में। विचार है केवल देवकी की अभी, कुछ समय बाद उत्पन्न होने वाली सन्तान का।

अनुराधा पुनः आ पहुंची थी, उनसे कम व्यग्र और चिन्तित नहीं थी वह। कहा था—"आर्य! देवकी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है।"

वसुहोम ने सुना। लगा था कि एक आंधी उन्हें छू गई है। प्रसन्नता की आंधी; किन्तु अगले ही पल चिन्ता गहरी हो गयी। अनुराधा मुड़कर पुनः प्रसूति-गृह की ओर जाने वाली थी; पर वसुहोम ने रोक दिया—"सुनो!"

उसने पति को देखा।

"पुत्र है या पुत्री, यह समाचार तुम्हारे और चंचला के अतिरिक्त किसी तक न पहुंचे।"

अनुराधा ने स्वीकृति में सिर हिलाया। तीव्रगति से लौट पड़ी। वसुहोम पुनः व्यग्रभाव से चहलकदमी करने लगे, अब क्या हो?

वर्षा, आंधी और तूफान के साथ-साथ गर्जन का कोलाहल इतना बढ़ गया था कि लगता था, जैसे अपना ही सोच सुन नहीं पा रहे हैं। सब ओर बिखरी व्यग्रता अब हड़बड़ी में बदलने लगी थी। असंख्य बिजलियां कौंध रही थीं और उन्हीं के साथ-साथ लगता था कि शिलाखंड टूट-टूटकर

आकाश से गिरने लगे हैं इतना तीव्र मेघ-गर्जन !

सहसा वसुहोम को लगा कि कारागार के विभिन्न हिस्सों में प्रहरी इधर-उधर दौड़ रहे हैं। वसुहोम भी लपक पड़े थे—"क्या हुआ ?" वह चीखे।

उत्तर में कोई चीखा भी था—"क्षमा करें देव ! इस प्राकृतिक उत्पात की स्थिति में कोई भी अपनी जगह स्थिर नहीं रह पा रहा है।"

पर वसुहोम को वह खीझ-भरा उत्तर ऐसे सुनायी दिया था, जैसे बीच-बीच में जल के झकोरों ने तट को तरह-तरह के स्वरों से भर दिया हो। हर स्वर एक करुण क्रंदन।

□

कारागृह मे जहां-तहां हड़बड़ी ही नहीं अव्यवस्था फैल गयी थी ! अनेक पेड़ों के चीत्कार करके गिरने का स्वर आया और फिर अनेक प्रहरी जहां-तहा भाग खड़े हुए अधिकतर द्वार चरमराने लगे। कुछेक टूट भी गये।

कंटक और वसुहोम दौड़-दौड़कर स्थिति देखते रहे। मुख्य द्वार के प्रहरी कहां जा छिपे हैं, किसी को पता नहीं था। जिसका जहां समाया, वहां जा घुसा।

वसुहोम बुरी तरह भीग चुके थे। पुनः निवास पर लौटे, तो पाया कि गोकुल से आया गुप्तचर हांफता हुआ खड़ा है।

कुछ पूछ सकें, इसके पूर्व ही बोल पड़ा था वह—"देव ! नंद पत्नी यशोदा के गर्भ से अभी कुछ समय पूर्व ही कन्या उत्पन्न हुई है।"

"क्या ?" वसुहोम भौचक्के हो गये। निःसन्देह सब कुछ ईश्वरीय है। पल भर पहले सोच रहे थे वह कि क्या करेंगे, किस तरह करेंगे ? संयोगवश यशोदा और देवकी ने सन्तानों को जन्म दे भी दिया, तो इतने कड़े पहरे से किस तरह निकाल सकेंगे शिशु को किस तरह यशोदा की संतान लायी जा सकेगी ?

किन्तु अब सब कुछ उत्तरित हो चुका था। बिना खोजे उत्तर। प्रकृति का नाम ही तो ईश्वर है। वही सब का आयोजक, वही सबका संयोजक। वही जन्मकर्ता, वही जीवनहर्ता।

मनुष्य मात्र माध्यम और वसुहोम के लिए सौभाग्य का विषय है। कि उसे ईश्वर ने माध्यम नहीं, तो माध्यम का अंश बना दिया है। किस पूर्व जन्म के संस्कार या पुण्य ने उसे यह सुख दिया है, वह नहीं जानता;

किन्तु यह सुख उसे मिला है।

"अब क्या होना है आर्य !" गुप्तचर पूछ रहा था।

"हूं ?" वसुहोम चौंके, जैसे विचारों की आंधी का थप्पड़ झेलकर सहज हुए। बोले—"यमुना किनारे दो नाविक प्रतीक्षारत हैं। उनसे कहो कि तत्पर रहें।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" गुप्तचर लौट गया था।

वसुहोम सक्रिय हुए। तीव्रगति से उस ओर दौड़ पड़े, जिधर देवकी-वसुदेव का कारागृह था, वही प्रसूतिगृह…।

[]

अनुराधा सामने थी उनके।

"कैसा है शिशु ?"

"स्वस्थ-प्रसन्न और तेजस्वी !" अनुराधा ने उड़ता-सा उत्तर दिया। उत्तर उड़ रहा था या कि वायु ने शब्द रह-रह कर उड़ा दिये थे, ज्ञात नहीं।

बदन थर्रा रहा था दोनों का। जितनी ठंड बढ़ गयी थी, उससे कहीं अधिक बढ़ गया था स्थिति की अनुकूलता का आनन्द। दोनों ने ही थर्राहट उत्पन्न की। ऐसे समय किसी भी तरह का कोई व्यवधान आ नहीं सकता था। सभी अपनी-अपनी जीवनरक्षा में लगे थे। अधिकतर प्रहरी भाग चुके थे और कुछ थे, जो भाग रहे थे। देवकी-वसुदेव के कारागार में शान्ति थी। द्वार खुले हुए थे; किन्तु आंधी के कारण बार-बार बज उठते और मेघ गर्जन उनके स्वर को दबोचकर कहां गुमा देता, पता ही न चलता।

"देवकी !" वसुहोम ने उसी तरह थरथराते स्वर में पूछा।

"कुशल से हैं; किन्तु सदा की तरह अशांत और व्यग्र।"

"वसुदेव ?"

"चुपचाप बैठे हुए हैं।" अनुराधा ने कहा—"केवल प्रकृति लीला का चमत्कार देखते हुए।"

"तुमने उनसे कुछ कहा है ?"

"नहीं!"

"तब चलो, आओ मेरे साथ !" और शब्द पूरे करते-न-करते वसुहोम

कारागृह में समा गये।"

चंचला एक ओर खड़ी थी। दूसरे कक्ष में बैठे थे महामंत्री वसुदेव। शान्त, गंभीर और सहज। देवकी मातृसुख से भरी हुई थीं; किन्तु दृष्टि किसी ओर नहीं। उस छोटी-सी खिड़की को देख रही थीं, जिसमें रह-रह कर बिजली की तड़कन होती। अन्धेरे कारागृह में, जिनकी प्रकाश-व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी, कुछ पल अन्धकार छाता, कुछ पलों में नए प्रकाश सूर्य की असंख्य किरणों जैसा प्रकाशित हो उठता।

बहुत सुन्दर बालक था। एक क्षण विमुग्ध भाव से वसुहोम उस शिशु को देखता रह गया था। सांवला था वह, बिलकुल यमुना-जैसा। मुस्कान की कुछ कौंधें भी वसुहोम की दृष्टि में कौंधी थीं, ठीक तब जब बिजली कौंधी, प्रकाश पुंज गिरे।

"क्या देख रहे हो?" अनुराधा ने उसे टोका। टोका नहीं सतर्क किया कि वसुहोम का कर्तव्य अभी शेष है।

"हां…हां, यही अवसर है। यही ईश्वर की इच्छा।" वसुहोम तीव्र गति से दूसरे कक्ष में पहुंचकर वसुदेव के पास जा खड़ा हुआ था, "मंत्रिवर! शिशु को उठाइए और मेरे साथ चलिए।"

"किन्तु…ऐसी प्राकृतिक स्थिति में यह कोमल बालक…।" देवकी ने सुन लिया था वसुहोम का कथन।

वसुहोम ने कहा था—"सोच-विचार का अवसर नहीं है देवी। यह साक्षात् ईश्वर हैं! सब इन्हीं का किया हुआ है, इन्हें कैसा भय!"

वसुदेव बिना कुछ कहे, चुपचाप किसी खिलौने की तरह शिशु को उठाकर चल पड़े; किन्तु देवकी ने रोक लिया था उन्हें—"रुकिए नाथ!" वह थम गये।

---

1 जिस समय श्रीकृष्ण को जन्म के तुरन्त बाद कारागृह से नन्द तक पहुंचाया गया, उस समय के प्राकृतिक उत्पातों का वर्णन करते हुए विभिन्न ग्रंथों में लगभग एक ही बात मिलती है। उस समय तूफान बिखरा हुआ था। यमुना उफनकर नगर और आसपास दूर-दूर तक बिखरी हुई थी। इस स्थिति का वर्णन श्रीमद् भागवत पुराण के दशम स्कन्द में इस तरह आया है—'योगमाया ने ऐसी माया फैलायी कि उसके प्रभाव से सबकी सुध-बुध जाती रही। बस कृष्ण को लेकर वसुदेवजी चले, द्वार अपोआप खुल गए। यमुनाजी बढ़ रही थीं, चारों ओर, जल-ही-जल दीख पड़ता था।"

"मेरे समीप लाइए इसे। तनिक दृष्टि भरकर देख तो लूं।" और वसुदेव के हाथों से शिशु को लेकर वह उसे चूमने-दुलारने लगी थी।

अनुराधा, चंचला, यहां तक कि वसुहोम की आंखें भी छलछला आयी थीं उस मार्मिक दृश्य को देखकर, फिर जैसे चेत हुआ था उसे—"बस देवी। बस, अब समय न गंवाएं। हमें अपना कर्तव्य करने दें।"

वसुदेव ने शिशु पुनः देवकी की गोद से लिया। लगा था कि छीना है, फिर तीव्रगति से वसुहोम के पीछे-पीछे चल पड़े! आंधी, पानी और मेघ-गर्जन पूर्ववत चल रहे थे। सहसा उनकी गति अधिक तीव्र हो गयी थी। कारागार के हर कक्ष में केवल सन्नाटा बिखरा हुआ था। आहटों के नाम पर दैत्यवत् चीत्कार करती आकाश-गर्जनाओं के अतिरिक्त कारागृह के पिछवाड़े बह रही यमुना की कोलाहल करती लहरें!



उनके पैरों में गति थी। गति से कहीं अधिक था आत्मविश्वास और आत्मविश्वास से कहीं अधिक अलौकिक शक्ति।

निःसन्देह अलौकिक ही थी वह शक्ति। अलौकिक न होती, तो वैसी प्राकृतिक स्थिति में वसुहोम और वसुदेव के पैर धरती पर ठहरे रहे होते। टोकरी का पहले से प्रबन्ध कर लिया था उन्होंने। उसी टोकरी में बालक को रखकर आगे और आगे बढ़े जा रहे थे वे।

वसुदेव ने स्वयं सम्हाल रखी थी टोकरी। वसुहोम का मन हुआ था कि उनसे कहे—"मुझे दे दें, श्रीमान्!" किन्तु चुप रहना ही उचित समझा। उस अलौकिक का बोझ सम्हाल सकेगा वह?

वे चलते रहे। यह कहना अधिक उचित कि कोई अदृश्य शक्ति उन्हें चलाती रही। कारागार का पूरा मार्ग पार कर लिया था उन्होंने। उस बीच न बिजली चमकी, न कोई वृक्ष गिरा, फिर वे कारागृह की सीमा से बाहर खुले में आ गये। यमुना की तेज लहरों का तूफानी स्वर वातावरण में कौंध रहा था।

और उसी के साथ कौंधने लगी थीं असंख्य विद्युत किरणें। कभी दक्षिण में प्रकाश ज्योति खिलती, कभी पश्चिम में। किसी बार पूर्व और किसी बार उत्तर में।

पल-पल राह स्पष्ट होती गयी। वसुहोम सोच रहा था कि यह भी क्या कम अलौकिक है कि कारागार से निकलते समय एक भी कौंध नहीं

हुई और अब निरन्तर ?

□

वसुदेव ने बालक को अपने से सटा लिया था। वसुहोम यहाँ-वहाँ नाविक को खोज रहे थे। जो निश्चित स्थान दिया था, वह यही था। वसुदेव पूरी तरह वसुहोम पर निर्भर। वसुहोम ने कहा था—"एक क्षण रुकें यादव श्रेष्ठ! वह यहीं कहीं होगा।"

और उसी समय बिजली कौंधी। उन्होंने स्पष्ट देखा था, सामने, ठीक सामने एक कठोर चेहरा उपस्थित हुआ। शरीर से बलिष्ठ था वह। आँखें कौंधती हुई। सिर झुकाकर उसने कहा था—"सेवक उपस्थित है, श्रीमन्।"

गहरे सन्तोष से वसुहोम आश्वस्त हो गये थे। इतनी सघन रात्रि और तूफान के बीच भी वह असीम साहस जुटाकर खड़ा रहा। जितना चकित हुए थे, उतने ही आश्वत। निश्चय ही देवकी-वसुदेव का सद्यजात शिशु अलौकिक प्रतिभा से पूर्ण है।

वसुहोम को जैसे कुछ स्मरण हो आया था। कहा—"मंत्रिवर! आप बालक को लेकर महिमामयी यमुना की राह गोकुल पहुंचिए। मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करूंगा।"

वसुदेव ने कुछ कहा नहीं। नाविक ने उन्हें सहारा दिया। वह नाव की ओर बढ़ गये। अगले ही क्षण यमुना के जल में एक संयम उभर आया। लगा था कि नदी ने अपने उग्र, रौद्र रूप को अनायास ही संयत कर लिया है।

यह सब कुछ विस्मित ही नहीं, हतप्रभ कर देने वाला था। उससे कहीं अधिक स्तब्ध करने वाला।

वसुहोम ने सघन वृक्ष की छाया में उसके विशाल तने का सहारा ले रखा था। वहीं से देखता रहा था उस दिशा की ओर, जिस ओर वसुदेव चले जा रहे थे। यह अपने आप में कम हैरान करने वाला नहीं था कि वसुदेव की बढ़ती नौका को जैसे कोई प्राकृतिक अवरोध झकझोर ही नहीं रहा था लगता था कि नाविक संयमित ढंग से डांड चलाये जा रहा है और कुछ पल बाद जैसे नाव दीखनी बन्द हो गयी थी। केवल वसुदेव दीखने लगे थे, फिर वह भी दृष्टि से ओझल हो रहे। यमुना की लहरें विद्युत किरणों की तरह चमचमा रही थी और उनकी चमक ने वसुहोम की दृष्टि को चौंधिया डाला था। वह कुछ भी देख समझ पाने में अपने आपको असमर्थ

अनुभव करने लगा था।



विशाल, वेगमयी यमुना का न कोई ओर दीखता है, न छोर। वसुदेव जहां तक दृष्टि दौड़ाते हैं; वहां तक जल-ही-जल दीखता है। आकाश गर्जनाएं करता हुआ, असंख्य बाघों जैसा और बालक पर जब-जब विद्युत किरणों के बीच दृष्टि जाती है, तब-तब लगता कि वह हर परिस्थिति से परे है, अप्रभावित।

ऐसी अद्भुत जीवन-शक्ति कहां से आयी बालक में ? वसुदेव सोचते हैं। उससे भी अधिक सोचते हैं, जो कुछ समय से घट रहा है, जिस तरह घट रहा है, उस सब पर। निःसन्देह आकाशवाणी उचित ही हुई थी। यही वह बालक है, जो गणसंघ का मुक्तिदाता बनेगा। क्रूर कंस से ब्रजभूमि के जन-जन का हित करेगा।

अवश्य ही अलौकिक, किन्तु लौकिक !

वसुदेव बढ़ते गये थे। यमुना वेग में बढ़ी थीं और इतनी बढ़ी कि दूसरे पार पहुंचते-पहुंचते नाव बुरी तरह डगमगा उठी। अगले ही क्षण लगा था कि नाव ने ज़ोर से हिचकोला लिया है। लगता है कि बालक को चूमने चली आ रही हैं, ममतामयी यमुना ! गर्जन-तर्जन के आश्चर्यजनक स्वर से आपूरित।

अगले ही क्षण सोच-विचार का क्रम टूट गया। यमुना की वेगमयी लहर ने जोरों से उछाल ली और बालक के पैरों को छू लिया। वसुदेव बुरी तरह घबरा गये थे। मन गहन आशंका से भर उठा; पर पल भर बाद वह आशंका जैसे व्यर्थ हो गयी। व्यर्थ ही नहीं, चमत्कार से भर उठी।

यमुना का कोलाहल करता तीव्र स्वर सहसा धीमा और धीमा होने लगा था। यों, जैसे बच्चे को दुलार रही हों। बिलकुल ममत्वमयी माता के स्वर में, फिर वे शान्त होने लगी।

लगा था कि तूफान भी कुछ-कुछ थमने लगा है। अब वह गति और राक्षसी वेग नहीं है उसमें। वसुदेव के पैर गीले तट पर लगे। दूसरा किनारा ! नाविक बोला था—"देव ! वह रहा गोकुल !"

बिजली तड़की और उसी के साथ गोकुल का सुन्दर दृश्य एक मीठे स्वप्न की लहर जैसा आंखों के सामने तैर गया ! वसुदेव तीव्रगति से बढ़ चले उसी ओर।

अब न कुछ सोच रहे थे, न ही सोचने की इच्छा थी।

लगभग सामने दीखता गोकुल पार करते हुए थोड़ा समय लगा था। तूफान के कारण दूर-दूर तक धरती गीली हो नहीं, कीचड़ से भर गयी थी; पर वसुदेव के कृशकाय बदन को जाने किस शक्ति ने आप्लावित कर रखा था। वह चलते गये और थोड़े ही समय बाद नन्द गोप के द्वार पर थे।

द्वार खटखटाए इसकी आवश्यकता नहीं हुई थी। द्वार पर ही छाया की तरह खड़ी आकृति देखी थी उन्होंने। नन्द सामने थे।

"आओ मित्र !"

वसुदेव पर कुछ कहते नहीं बना। उन दबे, स्नेहपूर्ण शब्दों में विश्वास और सुख का कैसा अदृश्य समुद्र समाया हुआ था। लगा था कि वसुदेव स्वर और शरीर सहित उसी समुद्र में डूब गये हैं। कहने के लिए मन में बुदबुदाहट के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा है।

मन में या गले में ? हां, गला ही भर्रा गया था उनका। इतना कि आंसू आंखों से बह आये। नन्द गोप कन्धे को पूरी बांह में घेरे हुए स्नेह से उन्हें घर में ले गये। थोड़ी देर बाद शब्दहीन वसुदेव को वह उस विशेष शयन-कक्ष में अपने साथ ले पहुंचे, जहां यशोदा गहरी निन्द्रा में निमग्न थीं।

वसुदेव ने एक बार उन्हें देखा था, फिर यशोदा को। ठगे से खड़े रह गए थे। नन्द बोले थे—"देख क्या रहे हो, मित्र ! शीघ्रता करो। बालक को देवी के पास लिटाओ और···।"

आगे नन्द क्या बोले, क्या नहीं, वसुदेव सुन नहीं सके। चुपचाप देवकी-सुत को यशोदा के पास लिटा दिया था, फिर यशोदा की बालिका को उठा-कर अपने सीने से लगा लिया था।

एक बार पुन: चुप खड़े देखने लगे थे नन्द को। नन्द उसी स्नेहादर के साथ उन्हें बांह का सहारा देकर कक्ष के बाहर ले आये थे।

□

मुख्य कक्ष में आकर बोले थे—"अब बहुत समय नहीं है मित्र !" फिर वसुदेव के शब्दों की प्रतीक्षा भी नहीं की थी उन्होंने। विदा कर दिया था उन्हें "तीसरा प्रहर समाप्त होने के पूर्व तुम्हें कारागृह में पहुंचना होगा।"

वसुदेव के पास उत्तर नहीं था या यह कहा जाये, तो अधिक उचित होगा कि शब्द ही नहीं थे, जो उच्चारित किये जा सकते। किसी खिलौने की तरह उनकी बांह से बंधे उसी तरह बाहर आ पहुंचे। बोले थे—"परन्तु

मित्र…!"

"हमारे पास बातचीत का न तो समय है वसुदेव ! न ही रात्रि की यह स्तब्धता इसकी स्वीकृति देती है। तुम जाओ, ईश्वर सब शुभ करेंगे !"

नन्द के शब्दों ने जैसे धकेल कर उन्हें पुनः तट-मार्ग की ओर बढ़ा दिया था। वे चल पड़े। कितना मन हुआ था कि कहें—'मित्र! त्याग और नेह का यह उपहार कौन, किस युग में किसे दे सका है?" पर सारे शब्द केवल विचारों में ही अटके रह गये। वसुदेव को नन्द ने अवसर ही नहीं दिया था, लगता था कि उनके सामने बोलने, देखने का भी साहस शेष नहीं रहा है।

अब, जब साहस जनमा था, तब वह आ पहुंचे थे तट पर। वसुदेव ने निःश्वास लिया। रह-रहकर बिजली इस समय भी कौंध जाती थी; किन्तु बहुत क्षणिक ! उसी क्षण में बालिका का चेहरा देखा था उन्होंने। सुकोमल बालिका! लगा था कि उग्र यमुना उनके अपने अन्तर में हलचल मचाने लगी हैं। एकदम भर गये। इतने कि शब्द पुनः डूबने लगे।

नाविक ने नाव पुनः तट पर लगा दी थी। वसुदेव चुपचाप जाकर नाव में बैठ गये। अगले ही क्षण नाव आगे बढ़ चली।



वसुहोम ने उत्साह के साथ स्वागत किया था उनका; किन्तु वसुदेव निरुत्साहित। अदृश्य पीड़ा और बोझिलता से भरे हुए। वसुहोम बड़बड़ाने लगा—"ईश्वर ने सुधि ले ही ली। कंस के अत्याचारों से त्राण दिलाने वाला जनम गया। जनमा ही नहीं, सुरक्षित भी हुआ।"

पर वसुहोम की वह प्रसन्न वाणी नन्द के स्वर में दबी-सी जान पड़ी। इतनी कि अस्तित्वहीन। लग रहा था कि इस समय भी पास ही खड़े हैं और कह रहे हैं—"अब बहुत समय नहीं है मित्र! तीसरा प्रहर समाप्त होने के पूर्व ही तुम्हें कारागृह पहुंचना होगा।"

और पहुंच गये हैं कारागृह। प्रकृति से भयभीत प्रहरी उस समय भी दृष्टि से ओझल हैं। भयानक विध्वंस के अनेक दृश्य दृष्टि के सामने बिखरे हुए हैं। बहुतेक सैनिक मृत या हताहत स्थिति में दूर जहां-तहां वृक्षों या टूट चुकी दीवारों के नीचे दबे पड़े हैं।

वसुहोम उन्हें उनके कारावास तक पहुंचा आया था। हथकड़ियां-

बेड़ियां भी डाली[1] गयी थी उनके पैरों में। आज विशेष रूप से। इसके बाद कंस से कहा जा सकेगा कि प्राकृतिक उत्पातों की स्थिति का लाभ उठाकर कहीं वसुदेव निकल न भागें, इसी कारण यह विशेष व्यवस्था की है।

कंटक, चंचला और अनुराधा कुछ अन्य सेवकों के साथ घायल सैनिकों को जहां-तहां से उबारने में लगे हुए थे। उत्पात का समय समाप्त हो गया था; किन्तु प्रकृति का कोप ज्यों-का-त्यों !

आंधी-तूफान के साथ-साथ बिजली भी रह-रहकर पुनः कड़कने लगी थी। वर्षा ने जोर पकड़ लिया। वसुहोम को इस सारी स्थिति का बहुत लाभ मिला। वसुदेव को कारागार में पहुंचाने के बाद वह निश्चिन्त भाव से पत्नी और साथी कारागृह उपाधीक्षक के साथ सहयोग करने लगा। एक सेवक को राजनिवास की ओर दौड़ा दिया था। कहा था—"इस समय जो स्थिति है, उसमें वसुदेव या अन्य कोई भी देवकी की संतान को लेकर महाराज तक नहीं पहुंच सकते। उचित यही होगा कि वह स्वयं पधारने की कृपा करें!"

स्वामिभक्ति का पूरा-पूरा नाट्य आयोजित हुआ। इस नाट्य-छाया में ही देवकी के पुत्र की रक्षा का अभिनय संयोजित था।

□

कारागृह उसी तरह अंधकार में डूबा हुआ था। कितनी रात बीत गई हो, वसुदेव ने अनुमान किया; किन्तु लगा कि अनुमान भी लड़खड़ाने लगे हैं। अनुमान ही लड़खड़ाने लगे थे उनके अलावा मित्र नन्द गोप के त्याग ने उन्हें बुरी तरह झकझोर डाला था !

संभवतः नन्द गोप के त्याग ने ही झकझोर डाला है उन्हें। केवल झकझोरा नहीं; सोच-समझ से रिक्त कर दिया है। लगता था कि यह सब अच्छा नहीं हुआ। अपनी सन्तति-रक्षा के लिए मित्र की संतान को बलि देने जा रहे हैं वह। चीखकर कोई कह उठा है उनसे—"यह तुमने क्या कर डाला वसुदेव! कंस की क्रूरता अब नन्द की अबोध बालिका पर टूटेगी?

1. श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार (दशम स्कन्द में वर्णित है कि) "वसुदेव व्रज में नन्द जी के घर पहुंचे और वहां अपने पुत्र को यशोदाजी की शैय्या पर लिटाकर उनकी पुत्री को लेकर लौटे। वसुदेव ने यह कन्या देवकी की शैय्या पर सुला दी और हथकड़ी बेड़ी पहनकर पहिले की तरह ही बैठ गये।"

वह दृश्य कैसे सह सकोगे, जबकि वह तुम्हारी ही आंखों के आगे निर्ममता के साथ बालिका को बलिवेदी पर चढ़ा देगा।"

लगा था कि रो पड़े हैं। रोये ही नहीं, सिसके हैं! इन सिसकियों का स्वर कोई और सुने न सुने, वसुदेव अवश्य सुन पा रहे हैं। यह सिसकियां उनके अपने आत्म की हैं, उनका अपना आप। वह, जो पूरी तरह इस समूचे नाट्याभिनय के संयोजन में केवल आहत ही नहीं हुआ है, क्षतिग्रस्त हो चुका है। मन, शरीर, हृदय, मस्तिष्क सभी कुछ लहूलुहान। असंख्य चोटें हैं उस पर।

"अच्छा नहीं हुआ।" वह अपने से ही बुदबुदाकर कह उठे थे। दृष्टि टिकी थी यशोदा और नन्द की सुकन्या पर। कैसे शान्त सोयी हुई है देवकी के पास! ऐसे जैसे कोमल कोपल लता से चिपकी रह जाती है। पल-भर बाद कंस आयेगा और वह इस कोपल को काट डालेगा।

आंखें मूंद लीं—"हे, ईश्वर! शक्ति दो मुझे। कैसे, क्योंकर यह अनर्थ करवाया तुमने?" वसुदेव बड़बड़ाने लगे थे।

देर तक अंधेरा पलकों के भीतर ओढ़े शांति की खोज करते रहे। ईश्वर को स्मरण करते हुए। लगता था कि पाप कर बैठे हैं। इस बोध से मुक्ति केवल ईश्वर ही दिला सकते हैं। ईश्वर, उनका आत्म स्वर! विवेक और ज्ञान की कसौटी से चमककर निकली प्रकाश रेखाएं!

लगा कि ये प्रकाश रेखाएं सहसा उनके मस्तक से विद्युत तरंगों की तरह प्रस्फुटित होने लगी हैं! एक के बाद एक, सिलसिलेवार। इनका न आदि दीख रहा था, न अन्त! बस, कौंधे जा रही थीं और हर कौंध के साथ स्वर उभर रहे थे।

"इस क्षण यही उचित था वसुदेव! यही उपयुक्त! इसके अतिरिक्त तुम कर भी क्या सकते थे?" और लगा था कि तर्क भी उन्हीं तरंग स्वरों के साथ मन में उभर आया है—"क्यो, कर क्यों नहीं सकते थे? चाहते तो इस अनर्थ का कारण न बनते, इसके माध्यम न हुए होते।"

"माध्यम?" लगा कि मन से मस्तिष्क तक कोई हलकी हंसी है, जो बिखर गयी है—"माध्यम का निश्चय करने वाले तुम कौन हो, यादव-सुत!"

वसुदेव ने चौंककर देखा। कारागार में चारों ओर अन्धकार था; किन्तु लगा कि मन प्रकाश से नहाया हुआ है, "हां, प्रकाश ही था वह। स्वरयुक्त

प्रकाश ! तर्कातर्क करता हुआ प्रकाश ! यह प्रकाश, उनका विवेक, उनकी आत्मा ! उनका ईश्वर !

किरण पुनः कौंधी—"माध्यम मनुष्य ही होता है वसुदेव ! कर्त्ता ईश्वर ! उस कर्त्ता के कार्य को भला तुम कैसे कर सकते थे ?"

"किन्तु प्रभु !" वसुदेव ने कहना चाहा।

प्रकाश ने अवसर नहीं दिया था उन्हें। तर्क अधिक गहरा कर दिया। अधिक निरुत्तर करनेवाला—"हां, तुम कर्त्ता नहीं हो ! जो कर्त्ता है, वही तुमसे करवा रहा था। यह कर्त्ता नन्द का भी जन्म कारण है, यशोदा भी इसी से प्रकट हुई है और यह सब जो प्रकृति के रूप में घटित-अघटित दीखता है, यह भी उसी कर्त्ता का कर्म ! सब अपने-अपने कर्तृत्व के केवल माध्यम बने हैं। अपने गुणावगुणानुसार ! उनका अपना कुछ नहीं, न शरीर, न मन, न घटित ! वे केवल माध्यम हैं और उन्हीं की तरह तुम एक माध्यम ! इसके अतिरिक्त न तुम्हारा कोई अपना व्यक्तित्व है, न रूप !"

वसुदेव निरुत्तर होने लगे; पर विचित्र थी निरुत्तरता की यह पराजित स्थिति ! इसमें सुख मिल रहा था उन्हें। लगता था कि देर से अशांति की गहन गुफाओं में भटकते हुए सहसा मार्ग पा गये हैं वह।

कारागार के गहन अन्धकार को किसी अदृश्य प्रकाश शक्ति ने भर रखा है। यह कोई और नहीं देख सकेगा ! इसे केवल वसुदेव देखेंगे। यही प्रकाश होगा जो उनके मन का हर अन्धकार दूर करता रहेगा ! उन्हें शक्तिमय बनायेगा। सम्पन्न करेगा !

प्रकाश का दूर-अनन्त से कौंधता शब्द उभरा था—"आश्वस्त हो वसुदेव ! तुमने ऐसा कुछ नहीं किया, जिसके तुम दोषी हो। तुमने वही किया है, जो भवितव्य ने करवाया। तुम केवल उसके वाहक बने हो। इससे अधिक तुम कुछ नहीं हो और न ही देवकी का जनम देना और यशोदा का तुम्हारे सुत को पालना इससे अधिक कुछ होगा।"

सम्भवतः इस प्रकाश-शक्ति से और वार्ता भी होती; किन्तु अवसर नहीं मिला। कारागार का सीखचोंवाला दरवाजा जोरों से खटखटाया, फिर तीव्र, कर्कश स्वर करता हुआ खुलने लगा। अगले ही क्षण कंस सामने थे।



वसुदेव अपने स्थान से उठे नहीं। केवल उन्हें देखते रहे। काल को

इस शांत भाव से देखने सहने का शक्ति कहां से जनम आई थी उनके भीतर ? नहीं जानते। बस, इतना जान-समझ रहे थे कि वह अनन्त शक्ति से ओतप्रोत हैं। सब कुछ सह जाने की शक्ति है उनमें। सब देखने का सामर्थ्य !

देवकी जाग गई थी और भयभीत दृष्टि से कभी भाई और कभी अपने अंक में लेटी सुकोमल बालिका को देख रही थीं। बच्ची की पलकें इस तरह मुंदी हुई थी जैसे वह गंगा की तरह शान्त हो ! अजानी गहराइयों तक गहरी ! अदृश्य छोर से पूर्ण ! चांदनी की शीतलता जैसी उज्ज्वल और भोर की पहली किरन-सी निर्मल !

कंस के पीछे खड़े थे वसुहोम और कंटक ! वसुदेव ने स्पष्ट देखा था उन दोनों को। वह अर्थपूर्ण दृष्टि से कभी कंस और कभी बालिका को देख रहे थे। ऐसे जैसे कंस पर उपहास करते हुए कह रहे हो—"मूर्ख ! तुम्हारा काल तो कहीं अन्यत्र जनम चुका है !"

कंस प्रसन्न ! मुड़कर वसुहोम से पूछा था, "भविष्य सूचना असत्य निकली वसुहोम ! बहिन देवकी का आठवा पुत्र हमारा काल बननेवाला था, किन्तु यह तो पुत्री हुई है ? हमे लगता है कि विधाता को लेकर लोग असत्य भाषण करते हैं[1] ! या फिर विधाता अस्तित्ववान ही नही है !"

वसुहोम और कटक चुप रहे। वसुदेव भी शान्त।

केवल देवकी बोल पड़ी थीं—"भईया। यह बालिका तुम्हारा क्या अहित करेगी ? यह तो स्वयं हिताहित की ज्ञान से परे है ? इसकी हत्या मत करो ! मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं। इसे जीवनदान दो।" और इसके पहले कि कोई कुछ कहे या कर सके देवकी आश्चर्यजनक शक्ति बटोरकर कंस के चरणों पर जा गिरी थी। विह्वल, कातर ! सिसकियों का एक सिलसिला बनी हुई।

कंस प्रतिक्रियाहीन खड़े रहे। सहसा झुककर उन्होने बहिन को उठाया और कहा था—"मैं तुमसे इसके लिए पहले ही क्षमा मांग चुका हूं, बहिन ! मैं आकाशवाणी के सत्यासत्य की विवेचना मे पड़कर व्यर्थ अपने प्राणो पर

---

१. श्रीमद् भागवत (दशम स्कंद) में कंस द्वारा देवकी के आठवें पुत्र की जगह कन्या को पाकर यह कहा गया है—"कंस बोला, देवता भी झूठे हैं ! आकाशवाणी ने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से पुत्र होगा, सो कन्या उत्पन्न हुई ?"

कोई संकट नहीं लेना चाहता ! मुझे क्षमा करना !" देवकी पुनः कन्या से जा लिपटी !

"भईया !" वह चीखी थी; पर कंस ने अवसर ही नहीं दिया था या यह कि अवसर नहीं मिला। वह वायुगति से गहरी नींद में सोयी हुई कोमल बालिका की ओर बढ़ा। अगले ही पल आतंक, भय और सिहरन से सभी की आंखें मुंद गई थीं। कंस ने बालिका को दूर उछाल दिया था।

छोटी-सी बालिका ! कारागृह की खिड़कियों के सीखचों में काफी फासला था ! उसी फासले के बीच से उछलकर अलोप हो गई ! उसी क्षण बिजली कौंधी। गर्जना हुई। कंस मुड़े। जबड़े कसे हुए थे उनके। पर दृष्टि में गहन सन्तोष का भाव था। काल-मुक्त जो हो गए थे ? देवकी बेसुध हो चुकी थी। वसुदेव उन्हें सम्हाल रहे थे।

गहन सन्नाटे के बीच कंस की दृढ़, कठोर चाल गूंजी। द्वार बन्द हो गया। उसी के पीछे-पीछे लड़खड़ाते, घृणा से भरे वसुहोम और कंटक भी चले गए ! रात्रि का सन्नाटा पूर्ववत् झंझावात् से भरा हुआ था…

भोर की किरनों ने जैसे पलकों पर हौले-हौले थपकियां देकर यशोदा को जगाया। ममता, आनन्द और सुखानुभूति से भरीं-भरी वह हौले-हौले बालक को निहारने लगी। शरीर थकन और कमजोरी से भरा हुआ था; पर मन विचित्र-सी शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव करता हुआ। बालक पर सूर्य-किरणें गिर रही थीं; किन्तु लगता था कि वे भी बालक के सुन्दर, तेजस्वी मुखमंडल से टकराकर द्विगुणित हो रही हैं। सांवला रंग था उसका; किन्तु छवि ऐसी मोहक कि यशोदा के भीतर गुनगुनाहट उभर आई। वह देर तक उसे देखती रही।

जाग रहा था वह। कोमल, सुन्दर नन्हे-नन्हे पैरों को हिलाता-डुलाता हुआ। ओह ! कितना आनन्द ! कैसी मोहकता ? लगता था कि प्रसूति के पश्चात् किसी अदृश्य लोक की यात्रा में विचरण करती रही थी, फिर पलकें खुली हैं, तो इस स्वर्गिक सुख के आलोक-संसार में

हैं'''।

याद था कि प्रसूति-पूर्व वेदना के कारण बेसुध हो गई थी वह। इसी बेसुधी में दानस्वरूप यह सुख दिया है। साक्षात् आनन्द, तृप्ति, और उल्लास का अनुभव। इसी अनुभव ने आन्दोलित कर दिया है उन्हें। न शरीर की आशक्तता का अनुमान कर पा रही हैं, न ही गत-आगत का कोई भय रह गया है। विचित्र निश्चिन्तता और आश्वस्ति से भर दिया है उन्हें। अमरता-जैसा आनन्द!

ममत्व की सम्पूर्णता का यह सुख कभी अनुभव नहीं हुआ उन्हें। लगता है, समूची सृष्टि उनकी गोद में आ गई है। पूर्ण प्रकृति! इसका न आदि है न अन्त, इस सुख का न प्रारम्भ है न समाप्ति! यह केवल सुख है! शरीर, शक्ति, मन, बुद्धि से परे, केवल सुख! इसका वर्णन कल्पनातीत और अनुभूति मन-मस्तिष्क से परे, ब्रह्मानुभूति!

यशोदा हौले-हौले बालक को दुलारने लगी थीं। जी हुआ था कि उसे चूमें, जी भरकर उसके घुंघराले बालों में अंगुलियां पिरोते हुए दुलरायें और आनन्द के सौरभ-रस से नहा उठें।

किन्तु तुरन्त अवसर नहीं मिला था उन्हें। द्वार हौले से चरमराया था। यशोदा ने देखा, नन्द आ खड़े हुए हैं। सौम्य, शान्त दृष्टि से उन्हें टकटकी बांधे देखे जा रहे हैं।

यशोदा कभी उन्हें देखतीं, कभी बालक को। सहसा बुदबुदाकर कहा

---

१. विभिन्न दंतकथाओं, किंवदन्तियों और भक्तिग्रंथों के अनुसार श्रीकृष्ण के स्थान पर जिस कन्या को कंस ने मारा, वह योगमाया कही गई हैं; किन्तु बहुतेक लेखकों ने लिखा है कि नंद कन्या को जो ठीक श्रीकृष्ण के जन्म के समय ही जनमी थी, बड़े गुप्त रूप से श्रीकृष्ण के स्थान पर पहुंचाया गया था।
आचार्य चतुरसेन ने कृष्ण-जन्म को लेकर लिखा है—"कृष्ण का बदलाव यशोदा की सद्यजात कन्या से इस गोपनीय ढंग से हुआ कि यशोदा को भी इसका पता न चला।"
श्रीमद् भागवत् के दशम स्कन्द के अनुसार ही—"यशोदा ने माया के हट जाने पर ही जाना कि मेरे बालक उत्पन्न हुआ है। वह पहले से ही निद्रा के वशीभूत थीं, अतः उन्हें यह सुधि ही नहीं रही कि पुत्र उत्पन्न हुआ या कन्या उत्पन्न हुई।"

था उन्होंने—"आओगे नहीं ? इसे देखो तो कैसा कोमल है ! ऐसे जैसे उदधि को कोई हथेली से स्पर्श करे।"

नन्द आगे बढ़ आये। आंखें बालक पर ठहरी हुई थी उनकी। पहले वह शून्य भाव से उसे देखते रहे थे, फिर लगा था कि बालक के होंठों के गिर्द आयी कोमल मुस्कान ने सचमुच वही अनुभव कराया है, जो पल भर पूर्व यशोदा के शब्दों में सुना। बादलों के बीच गुजरने जैसा अनुभव। उदधि को हथेली से स्पर्श करने-सा।

नंद की आंखें छलछला आई थी। झुके और हौले से बालक को हथेलियों में उठा लिया, फिर नेहपूर्वक हृदय से लगाया। पलकें मुंद गई थीं उनकी। अनुभव हुआ था कि जैसे अपने ही शरीर-भार से मुक्त हो गये हैं। न उनका कोई नाम है, न रूप, न शरीर है वे, न शरीर-मुक्त। केवल अनुभव हो गए हैं। विस्मय से पलकें खोलकर उन्होंने बांहों में हौले-हौले हाथ-पर हिलाते नन्हें शिशु को देखा। एक विस्मयकारी अनुभव ने पुनः भर दिया। कैसा विचित्र आकर्षण ! कितना मोहक दृष्टि ! और पुतलियों में कैसी चपलता ! सद्यजात शिशु को अनेक बार गोद मे लिया था उन्होंने; पर ऐसा विचित्र अनुभव कभी नहीं हुआ ? क्यों ?

स्मरण आ गया था। देवकी का आठवां सुत है यह। साक्षात् त्राता। उसका यह समूचा अद्भुत अनुभव ही नन्द का विश्वास बन गया था। तभी यशोदा की मीठी आवाज सुनी थी उन्होंने—"सुनो, शिशु को मुझे दो न !"

"हूं...? हां-हां !" वह जैसे किसी तन्द्रा से अलग हुए। बालक कृष्ण को यशोदा के पास लिटा दिया।

□□□

हिन्द पाकेट बुक्स के गौरवशाली प्रकाशन

सरस्वती सीरीज

उत्कृष्ट साहित्य के पेपर बैक संस्करण

मधुशाला	बच्चन	10 00
कोरे कागज	अमृता प्रीतम	10-00
रसीदी टिकट	"	10-00
देवदास	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	10-00
मंझली दीदी	"	10-00
काशीनाथ	"	10-00
दत्ता	"	10-00
गृहदाह	"	10-00
परिणीता	"	10-00
बहूरानी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	10-00
गोरा	"	10-00
आंख की किरकिरी	"	10-00
नौका डूबी	"	10-00
गीतांजलि	"	10-00
अपराधिनी	शिवानी	10-00
विषकन्या	"	10-00
श्मशान चम्पा	"	10-00
सुरंगमा	"	10-00
[illegible]	"	10-00

[illegible] (उपन्यास)	"	10-00
धर्मपुत्र	आचार्य चतुरसेन	10-00
देवांगना	"	10-00
वयं रक्षाम:	"	10-00
सोना और खून 1 : तूफान से पहले	"	10-00
सोना और खून 2 : तूफान की [illegible]	"	10-00
सोना और खून 3 : तूफान	"	10-00
सोना और खून 4 : तूफान के बाद	"	10-00
सोमनाथ	"	10-00
गोली	"	10-00
एक चादर मैली सी	राजेन्द्र सिंह बेदी	10-00
उमराव जान अदा	मिर्ज़ा हादी रुसवा	10-00
भारत के क्रांतिकारी	मन्मथनाथ गुप्त	10-00
[illegible]	डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा	10-00
सामान्य रोगों की सरल चिकित्सा	"	10-00
भारतीय [illegible]	[illegible]	10-00
[illegible]	[illegible]	10-00
चिन्ता छोड़ो : सुख से जियो	डेल कारनेगी	10-00
[illegible]	"	10-00
प्रभावशाली व्यक्तित्व	[illegible]	10-00
[illegible]	[illegible]	10-00
ठीक खाओ स्वस्थ रहो	डॉ० सुखदेवप्रसाद सिंह	10-00
भारतीय ज्योतिष	[illegible]	10-00
भाग्य रेखाएं	प्रकाश दीक्षित	10-00
उर्दू शायरी के नये अन्दाज़	सं० प्रकाश पंडित	10-00
उर्दू की बेहतरीन शायरी	" "	10-00
शे'र-ओ-शायरी	" "	
इन्दिरा गांधी : जीवनी और [illegible]	[illegible]	
कबीर : जीवनी और [illegible]	सं० [illegible]	

महाभारत-कथा पर
आधारित
उपन्यास-माला